हमारे पक्षी

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

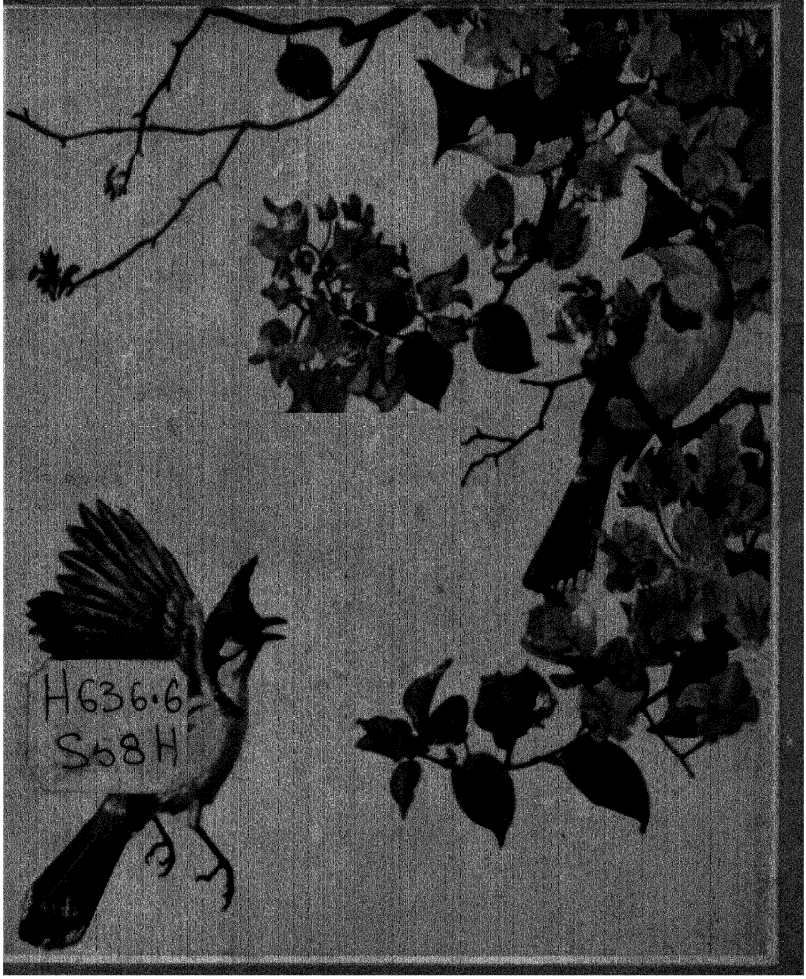

H636.6
S58H

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186489
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 636.6 S58H Accession No. H 3360

Author सिंह, राजेश्वर प्रसाद नारायण

Title हमारे पक्षी 1959.

This book should be returned on or before the date last marked below.

हमारे पक्षी

हमारे पक्षी

लेखक
राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

प्रस्तावना
इन्दिरा गांधी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
पुराना सचिवालय, दिल्ली–८

फरवरी १९५९ (माघ १८८०)

मूल्य २ रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली–८ द्वारा प्रकाशित तथा
उप-प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

मुझे यह देख कर बहुत खुशी हुई है कि चचा नेहरू की सलाह का अनुसरण कर श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह ने खास तौर से बच्चों के लिए पक्षियों के बारे में यह किताब लिखी है। इससे एक पुरानी ज़रूरत पूरी हुई है।

अधिकाँश भारतीयों के समान मैं भी पक्षियों में कोई खास दिलचस्पी नहीं लेती थी, जब तक कि मेरे पिताजी ने देहरादून जेल से श्री सलीमअली की दिलचस्प किताब मेरे पास नहीं भेजी। उस किताब ने जैसे मेरे सामने एक नई दुनिया खोल दी। तब जाकर मैं यह समझ पाई कि मेरे लिए कितना कुछ अज्ञात था।

पक्षी-निरीक्षण एक बहुत दिल लगाने वाला और फलदायक काम है। इसके द्वारा पहले आदमी पक्षियों की विभिन्न किस्मों में तमीज़ कर सकना, उनके घर बनाने के तरीकों और उनकी आवाज़ों को पहचानना सीखता है। उसके बाद क्रमशः यह समझ में आता है कि पक्षियों का भी छोटा ही सही, पर अलग-अलग व्यक्तित्व है और उनकी भी अपनी-अपनी आदतें हैं।

अर्वाचीन सभ्यता भी पक्षियों की ऋणी है, क्योंकि मनुष्य ने सबसे पहले उन्हीं की नकल में आकाश में उड़ने का प्रयत्न किया था।

यह हमारी खुशकिस्मती है कि भारत के शहरों तक में पक्षी हमारे साथ रहते हैं। दूसरे देशों में पक्षियों को देखने के लिए दूर देहाती इलाकों में जाना पड़ता है। मैं चाहती हूं कि हमारे बच्चे पक्षियों को पहचानें और उन्हें अपना दोस्त बनाएं।

मुझे आशा है कि यह छोटी-सी पुस्तक बच्चों में पक्षियों के प्रति दिलचस्पी पैदा करेगी और इसके द्वारा बच्चे खूब खुशी हासिल कर सकेंगे।

प्रधानमन्त्री भवन
नई दिल्ली
२७ नवम्बर, १९५८

—इन्दिरा गांधी

भूमिका

हमारे प्रधानमंत्री और आप सब के प्रिय 'चाचा नेहरू' ने 'भारत के पक्षी' नामक पुस्तक की अपनी प्रस्तावना में लिखा है—"अक्सर यूरोपीय बालक चिड़ियों और जानवरों, यहाँ तक कि फूलों और पेड़ों के बारे में भी बहुत कुछ जानता है। हमारे बच्चों, या बड़ों में भी, कितने ऐसे होंगे जो इन चीज़ों के बारे में काफी जानकारी रखते हों!"

हमारे लिए सचमुच ही यह बड़ी लज्जा की बात है कि हम अपने प्रतिदिन के साथी पक्षियों की इतनी कम जानकारी रखते हैं। कुछ पक्षी ऐसे हैं जो हम से अलग वनों में रहते हैं। उनकी बात हम छोड़ भी दें, तब भी दर्जनों ऐसी चिड़ियाँ हैं जो हमेशा हमारे साथ रहती हैं, हमारे घर के आँगन में या आस-पास की झाड़ियों में फुदकती रहती हैं या सामने के पेड़ पर गाती हैं। फिर भी, हम में से कितने लोग यह बता सकेंगे कि उनकी कितनी किस्में हैं, उनके शरीर की बनावट कैसी है, उनकी आदतें क्या हैं? पक्षी-जीवन के प्रति हमारा यह अज्ञान दुःख की बात है। कितना सौन्दर्य भरा है इन पक्षियों में, कितनी मिठास है उनकी बोली में! उन्हें देखकर हमें कितना आनन्द मिलता है! फिर हम उनके जीवन की बातों से उदासीन क्यों रहें?

संसार में पक्षियों की संख्या बहुत बड़ी है। अब तक कुल तेईस हज़ार किस्म के पक्षियों का पता लग सका है, पर इनके

अलावा भी ऐसे बहुत से पक्षी हैं जिनका पता हम नहीं पा सके हैं।

पक्षियों में भी हमारी ही तरह गर्म खून बहता है। वे भी हाड़-माँस के प्राणी हैं। वे सामान्यतः सुन्दर होते हैं, पर उन्हें यह सुन्दरता युगों के बाद प्राप्त हुई है। शुरू में ये रेंगने वाले छिपकिली की तरह के जीव थे, फिर चमगादड़ की भाँति उनके पंख उग आए, फिर बाल उगे, जिससे आज ये ऐसे सुन्दर लगते हैं।

ये हमें केवल मीठा गाना ही नहीं सुनाते, कीट-पतंगों को खाकर उनसे हमारी फसल की रक्षा भी करते हैं। पक्षी न हों तो पृथ्वी ऐसे कीड़ों से भर उठे और हमारे जीवन की मुश्किलें बढ़ जाएँ।

देश के बच्चों में भारतीय पक्षियों के प्रति रुचि पैदा करने और पक्षियों के बारे में सामान्य जानकारी कराने के लिए मुझ से कहा गया कि मैं पक्षियों पर कोई बालोपयोगी पुस्तक लिखूं। सबसे पहले मुझे उन पक्षियों पर लिखना था जो हमारे रोज़ के साथी हैं यानी जिन्हें बच्चे हर रोज़ देखा करते हैं या जिनकी आवाज़ सुना करते हैं।

मैं इस उधेड़बुन में पड़ा कि ऐसे कौन से पक्षी हैं जो इस कसौटी पर पूरे उतरते हैं। पर इसके लिए मुझे अधिक माथा-पच्ची न करनी पड़ी। मेरी यह समस्या शीघ्र ही आप-से-आप हल हो गई।

वर्षा का आरम्भ हो चुका था। रात में घनघोर वृष्टि हुई थी। सुबह नींद टूटते ही मेरे कानों में पपीहे की आवाज़ आई जो घर के पास के ही एक दरख्त पर ज़ोर-ज़ोर से पी-पी-हो की आवाज़ लगा रहा था। मैं उठा और घर के सामने के सहन में

यह देखने गया कि रात की वर्षा से फूलों के पौधों की क्या दशा हुई। अभी दो-चार ही कदम आगे बढ़ा था कि सामनें के गूलर के पेड़ की एक झुकी हुई डाल पर एक काला-सा चोटीदार पक्षी बैठा हुआ नज़र आया। उसका जोड़ा नीचे कीड़े पकड़ रहा था। काफी देर तक ये दोनों पक्षी वहाँ रहे, कीड़े पकड़ते रहे और एक दूसरे के साथ खेलते भी रहे। मुझे पहचानने में देर न लगी कि ये काले चातक थे। बगल ही में एक दूसरे वृक्ष पर नज़र आया कुछ ढूँढ़ता हुआ सा महलाठ जो 'चोर पक्षी' के नाम से भी विख्यात है। उसी रोज़ शाम के वक्त अपने एक मित्र के घर पर मोरों को उनके हाथ से दाने चुगते तथा नाचते भी देखा। कई नीलकण्ठ भी देखे जो पेड़ से झपट्टा मार कर नीचे रेंगते कीड़ों को हड़प रहे थे।

इसके बाद ही मुझे दिल्ली चला आना पड़ा। यहाँ मैं जिस बंगले में ठहरता हूँ उसका अड़ोस-पड़ोस पक्षियों से भरा हुआ है।

सुबह का वक्त था। मैं उठ कर बरामदे में बैठा हुआ चाय पी रहा था। कानों में कोयल की कुहू-कुहू की आवाज़ बड़ी मधुर लग रही थी। इतने में एक कौआ महोदय आकर सामने के पानी के नल से टपकते हुए जल से अपनी प्यास बुझाने लगे। फिर उड़ चले। उनके वह जगह खाली करते ही सामान्य बुलबुलों का एक जोड़ा वहाँ उसी उद्देश्य से आ पहुँचा। फिर आया कचबच करता हुआ सतबहिनियों का एक दल, फिर मैने, और अन्त में ईंटकोहरी पंडुकों का एक जोड़ा। पानी की कल घास के जिस छोटे-से मैदान में गड़ी हुई है, उसमें एक हुदहुद अपनी तीखी चोंच से कीड़े ढूँढ़ता हुआ पास की एक झाड़ी से निकल पड़ा। और बगल की कोठी से ज़ोरों से

चिल्ला उठा पिंजरे का तीतर—पतीला, पतीला। इतने में सहसा वृक्ष के पक्षियों में एक खलबली-सी मच गयी। वे भाग चले। देखा, सामने की एक डाल पर न जाने कहाँ से आकर बैठा हुआ था पक्षियों का दुश्मन, बाज़।

शाम हुई और संयोगवश मुझे फिर उसी बरामदे में बैठ कर कुछ समय बिताना पड़ा। इस बार दृश्य बदला हुआ था। झुंड-के-झुंड तोते नीम के पेड़ पर शोर मचा रहे थे। सामने के बहेड़े के वृक्ष पर चील अपने घोंसले के पास रह-रह कर ची-ई-ई-इ-इ बोल उठती थी। वैजन्ती के पेड़ों के नीचे एक महोख डोल रहा था जिसकी लंबी दुम बाहर निकली हुई थी। एक दूसरे पेड़ पर भुजंगों की एक टोली उत्तेजित-सी नजर आती थी। बरामदे की उठी हुई चिक पर गौरैयों की चींचीं-चूँचूँ गूंज रही थी।

धीरे-धीरे सन्ध्या का घना अन्धकार चारों ओर फैल गया। चिड़ियाँ जहाँ-तहाँ चली गईं। रह गए केवल दो-चार कबूतर बरामदे के छज्जों पर बैठे हुए, वह भी चुपचाप। मैं एकाकीपन का अनुभव करने लगा। फिर भी वहीं बैठा रहा। कुछ ही देर में पास के एक पीपल की डाल पर से उल्लू बोल उठा और काफी देर तक रह-रह कर उसकी उदास आवाज़ कानों में आती रही।

मेरे नित्य के साथी और सुपरिचित पक्षी कौन हैं, इसे समझने में मुझे अब देर न लगी और मैंने इस पुस्तक में इन्हीं पक्षियों का परिचय देने का निश्चय किया जो आपके सम्मुख है।

—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

विषय-सूची

प्रस्तावना	३
भूमिका	५
कोयल	११
कौआ	१६
महोख	२६
भुजंगा	२८
पपीहा	३२
चरखी या सतबहिनी	३५
बुलबुल	३६
मैना	४४
तोता	५३
कबूतर	५६
पंडुक	६२
चील	६७
बाज़, बहरी, शिकरा	७१
हुदहुद	७५
नीलकण्ठ	७६
महलाठ	८१
गौरैया	८३
उल्लू	८६
तीतर	६३
मोर	६६
उपसंहार	६६

कोयल

विलायत में जिस जाति की चिड़ियों को कक्कू कहते हैं उसी जाति का पक्षी कोयल भी है । पर विलायती कक्कू की और इसकी सूरत-शक्ल में बड़ा फर्क है। यही नहीं, बल्कि यह हिमालय की पहाड़ी कोयल से भी भिन्न है। देखने में पहाड़ी कोयल अधिक सुन्दर होती है पर गाने में यह उससे कहीं बढ़ी-चढ़ी है, उस्ताद है, और इसीलिए हमारे देश के सभी पक्षियों से यह श्रेष्ठ मानी गई है। मनुष्य हो या पशु-पक्षी, उनका गुण ही उनको बड़ा बनाता है, केवल

खूबसूरती से ही कोई बड़ा नहीं होता । कविवर गिरिधरदास ने ठीक ही कहा है—

गुण के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय,
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ।
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन,
दोऊ कौ इक रंग, काग सब भये अपावन ।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के ।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ।।

वसंत आने पर जैसे पेड़ों पर नए-नए पत्ते उग आते हैं और फिर वे तरह-तरह के फूलों से लद जाते हैं, वैसे ही कोयल के गले में भी एक नई ताकत आ जाती है और वह कुहू-कुहू गाने लगती है । कभी इस वृक्ष पर कभी उस वृक्ष पर गा-गा कर एक शोर मचा डालती है । बच्चों को इसका गाना इतना प्यारा लगता है कि ये भी इसकी ही तरह कुहू-कुहू बोल कर इसकी नकल करने लगते हैं । वसंत ऋतु से लेकर आषाढ़-सावन के महीनों तक यह बोलती है, उसके बाद चुप हो जाती है । जाड़ों में बिलकुल ही नहीं बोलती । इसे ठंडक पसन्द नहीं है । अतएव सर्दियों में बहुत सी कोयलें दक्षिण भारत की ओर जहाँ जाड़ा कम पड़ता है, चली जाती हैं; फिर वसंत के आते ही लौट आती हैं । स्वभाव की ये बड़ी शर्मीली होती हैं । अधिकतर पत्तों की ओट में छिपी रहती हैं और हम इन्हें तभी देख पाते हैं, जब ये एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़ती हुई जाती रहती हैं ।

देखने में नर और मादा एक-सी नहीं होतीं । नर का रंग गहरा चमकीला काला होता है, चोंच पीलापन लिए हुए हरी तथा आँखों

की पुतली सुर्ख होती है। पैर गहरे सलेटी रंग के होते हैं। मादा का रंग काला न होकर भूरा होता है, पेट का रंग गहरा भूरा होता है, सिर और पीठ पर सफेद चित्तियाँ और डैनों, पूंछ तथा शरीर के निचले हिस्सों पर सफेद धारियाँ होती हैं। बच्चों की चोंच काली तथा आँखें भूरी होती हैं। बचपन में पैरों का रंग शिशु मादा का स्याने नर जैसा, और नर का मादा जैसा होता है जो उनके बड़े होने पर बदल जाता है। नर, नर का और मादा, मादा का रंग धारण कर लेती है।

कद में कोयल कौए जैसी प्रायः १७ इंच लम्बी होती है, पर शरीर कौए से पतला और दुम अधिक लंबी होती है। ठंडे पहाड़ी प्रदेशों को छोड़ कर यह भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में पाई जाती है। इसकी दो किस्में हैं: एक वह जो बर्मा से असम तक मिलती है और दूसरी वह जो श्रीलंका तथा भारत के अन्य हिस्सों में पाई जाती है। पहली, दूसरी से कद में बड़ी होती है।

बरगद, पीपल आदि वृक्षों के छोटे-छोटे फल तथा कीड़े-मकौड़े, दोनों ही इसके आहार हैं।

यह वृक्ष पर रहने वाली चिड़िया है। ज़मीन पर बैठी हुई यह शायद ही कभी देखी जाती हो।

पिंजरे में यह आसानी से पाली जा सकती है। वसंतकाल के आते ही पिंजरे में गला ऊँचा करके खूब मस्ती से गाना शुरू कर देती है। गाता नर ही है, मादा नहीं। मादा जब एक वृक्ष से उड़ कर दूसरे पर जाती रहती है तब किक्-किक्-किक् बोलती है और इस शब्द से यह दूर से ही पहचानी जा सकती है।

कौए बड़े काइयाँ होते हैं। पर कोयल धूर्तता में उनके भी कान काटती है। वह स्वयं घोंसला नहीं बनाती, अपने अंडे कौए के घोंसले में पार आती है तथा उसी से अपने बच्चों का पालन-पोषण करवाती है। संयोग से कोयल और कौए के अंडे मिलते-जुलते होते हैं। दोनों के अंडा देने का समय भी एक ही है। अंडे का रंग नीलापन लिए हुए हरा होता है जिस पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी होती हैं।

विलायती कोयल एक ऋतु में अधिक-से-अधिक २५ अंडे देती है पर हमारे देश की कोयल ११ से अधिक अंडे देती हुई नहीं देखी गई। अप्रैल से अगस्त तक इसके अंडा देने का समय है।

जब अंडा देने का समय आता है तो नर कोयल, मादा कौए के घोंसले के समीप पहुँचती है। कौए स्वभाव से ही कोयल से चिढ़ते हैं। अतएव नर कोयल को देखते ही वे उस पर टूट पड़ते हैं। नर भाग खड़ा होता है, कौआ या कौए उसका पीछा करते हैं। इधर मादा कोयल मैदान खाली पाकर कौए के घोंसलों में अंडे पार आती है और तब एक ऐसी आवाज़ करती है जिससे नर समझ जाता है कि काम सध गया। बस, अपनी रफ्तार तेज़ करके वह नौ-दो-ग्यारह हो जाता है। उड़ने में वह कौए से तेज़ होता है।

कोयल की चोंच में अंडा देखकर यह धारणा फैली हुई है कि वह अंडा मौका पाकर कौए के घोंसले में रख आती है। पर यह कहना मुश्किल है कि यह बात कहाँ तक सही है। ज्यादा संभव यह मालूम होता है कि जब उसके अंडा पारने का समय आता है तब उसे इसका ज्ञान हो जाता है और तभी वह कौए के

ही शिशु मान कर इसका लालन-पालन कर रहे थे और यह बड़े सुख में था, पर अपनी ही मूर्खता से इसे यह विपत्ति अपने सिर पर लेनी पड़ी है। बात यों है कि इसे अधिक और बेवक्त बोलने का शौक-सा हो गया, सो कौओं के सामने भी यह लगा मुंह खोल कर बोलने। कौओं ने देखा कि इसकी बोली तो हमारी जैसी नहीं है, कोयल जैसी है। हो न हो यह हमारी आँख में धूल झोंक कर यहाँ आ बैठा है। सो उन्होंने चोंच से मार-मार कर इसे घोंसले से नीचे गिरा दिया और यह अपनी बेवकूफी का फल भोग रहा है।"

राजा बुद्धिमान था ही, फौरन इस घटना से उसने सबक सीख लिया और तब से वह कवि की इस उक्ति का पालन करने लगा--

'अति का भला न बोलना, अति का भला न चुप्प।'

मंत्री का मनोरथ सफल हुआ तथा राजा ने शासन के कामों में बहुत बोलना छोड़ दिया। राज्य के सारे काम अब बड़ी सुन्दरता से चलने लगे।

कोयल का कौए के घोंसले के पास इस तरह बैठना खतरे से खाली नहीं होता। एक साहब का कहना है कि उन्होंने अपनी आँखों के सामने एक बार कौओं को एक मादा कोयल को जान से मारते देखा था। फिर भी बच्चे का प्यार उसे कौए के घोंसले के पास ले ही जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कोयल के बच्चे बड़े होते ही कौए का घोंसला छोड़ कर चल देते हैं तथा माँ-बाप की तरह ही उनसे शत्रुता का भाव रखते हैं। कौओं ने उन्हें पाला-पोसा, इसका

ज़रा भी खयाल नहीं करते हैं। कोयल-वंश के ऊपर यह कृतघ्नता का व्यवहार एक काला धब्बा-सा है पर जैसे चाँद पर काला धब्बा उसकी अलौकिक सुन्दरता में छिप जाता है, वैसे ही कोयल की वाणी की मिठास उसकी इस कलंक-कालिमा को धो डालती है--

विविध गुणों के साथ दोष है
नहीं एक टिक पाता,
जैसे धवल चन्द्रकिरणों में
शशि कलंक धुल जाता।

इसलिए हमारी यही कोशिश होनी चाहिए कि हम जितने ज़्यादा गुण अपने में ला सकें, लाएँ।

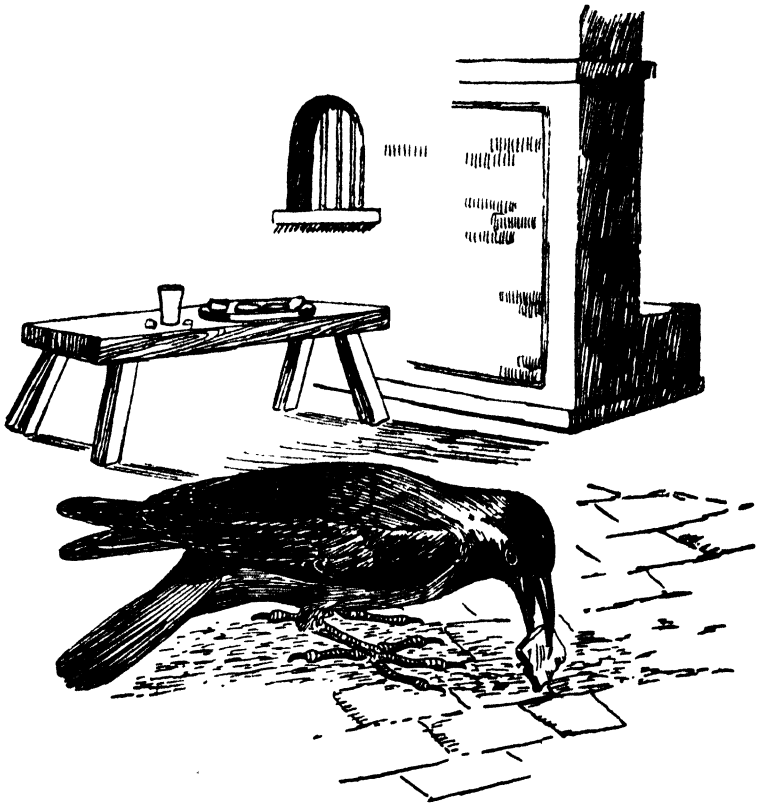

कौआ

इस देश में शायद ही कोई ऐसा शहर या गाँव होगा जहाँ कौए न हों । कबूतरों और गौरैयों के समान हमारे घरों की कार्निस अथवा छज्जों पर ये भले ही रात न बिताएँ, पर सुबह होते ही ये शहरों और गाँवों में आ पहुँचते हैं तथा घर-घर में जाकर काँव-काँव की ध्वनि से हमारी नींद तोड़ देते हैं । अक्सर आप देखेंगे

कि शाम होने के कुछ देर पहले शहर और गाँव की ओर से कतार-के-कतार कौए अड़ोस-पड़ोस के बाग-बगीचों की ओर, कभी-कभी मीलों दूर तक चले जा रहे हैं। वहाँ यह दरख्तों पर रात बिताते हैं, और फिर पौ फटते ही उसी तरह झुंड बाँधकर शहरों और बस्तियों की ओर लौट आते हैं तथा घर के द्वार अथवा आँगन में काँव-काँव करना शुरू कर देते हैं। वहीं दिन भर डटे रहते हैं तथा अपनी छेड़खानियों से हमें तंग कर डालते हैं। घर-आँगन से रोटियाँ चुरा भागना तो इनका प्रतिदिन का काम है। कभी-कभी छोटे-मोटे बर्तन और गहने तक ले भागते हैं। घर के छोटे बच्चे यदि बैठे खा रहे हों तो ये फौरन उनके पास पहुँच जाते हैं और उनकी थाली-कटोरी अथवा हाथ से रोटी-पूड़ी ले भागते हैं। यही नहीं, कभी-कभी उनके साथ खेलते भी हैं। उनके करीब चले जाते हैं और बच्चों को उत्साहित करते हैं कि वे उन्हें पकड़ने की कोशिश करें। बच्चे आगे बढ़ते हैं तो ये पीछे की ओर खिसक जाते हैं। फिर आगे आकर ऐसा हावभाव दिखाते हैं मानो इस बार वे ज़रूर ही पकड़ में आ जाएंगे। काफी समय तक बच्चों के साथ उनका यह खिलवाड़ चलता रहता है।

कौए हमें तंग अवश्य करते हैं पर उनके साथ हमारा इतना घनिष्ठ संपर्क हो गया है कि उनके न रहने पर हम एक कमी-सी अनुभव करने लगते हैं--ऐसा लगता है मानो हम कोई चीज़ खो बैठे हों।

ढिठाई में शायद ही कोई पक्षी उनका मुकाबला करने वाला होगा। कौए 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' के सिद्धांत पर चलने

वाले हैं। आप इन्हें लाख दुतकारें पर ये आपका घर छोड़ने वाले नहीं। ढेला मारने पर भी ये दो-चार कदम पीछे भले ही हट जाएँ पर घर छोड़ कर जाने वाले नहीं हैं। आप देखेंगे कि वे तुरन्त अपनी जगह पर आ डटे हैं और काँव-काँव कर रहे हैं। हर पक्षी के दुश्मन और दोस्त, दोनों ही होते हैं। पर कौए का पक्षी-समाज में कोई मित्र नहीं है। सबसे झगड़ा, सबसे अदावत। जिस किसी भी चिड़िया के घोंसले के पास यह चला, इसे दुतकार ही मिलती है। सभी इस पर अविश्वास करते हैं और इससे नफ़रत करते हैं। चोरी, सीनाज़ोरी, डाकेजनी आदि जो इसका स्वभाव है, इसका कारण है। बगुले में कोई खास गुण नहीं है, पर वह भी मौका मिलने पर इस पर ज्ञान ही बघारता है —

काला कौआ काँव-काँव करे,
सफेद बगुला तब यों कहे—
तुझ काले का क्या है काम,
मैं सफेद, मेरा बगुला नाम।

किन्तु कौओं में आपस का मेल बहुत गहरा होता है। किसी कौए को आप मार डालिए, फिर देखिए सैकड़ों कौए वहाँ आकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर देंगे। यही नहीं, कभी-कभी मारने वाले पर चोट भी कर बैठते हैं। ये हमें एकता का आदर्श पाठ पढ़ाते हैं।

यही नहीं, जहाँ कहीं भी ये रहते हैं, साथ-साथ रहते हैं। कई वर्ष पहले की बात है, कलकत्ता में बड़े ज़ोर का तूफान आया। उसके शांत होने पर देखा गया कि कलकत्ता के मैदान में पेड़ों के नीचे कई लाख कौए मरे पड़े हैं।

कौओं में एक विशेषता है जो शायद ही किसी और पक्षी में हो । वे कभी अपनी जाति के किसी कौए का ऐसा काम जिससे जाति पर धब्बा लगता हो, बर्दाश्त नहीं करते । अक्सर देखा जाता है कि किसी खुले मैदान में उनकी सभा बैठी हुई है, दोषी कौआ बीच में सिर झुकाए बैठा है। बाकी ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे हैं, मानो उसे दोषी ठहराने की कोशिश कर रहे हों। अंत में अगर वह कसूरवार साबित हुआ तो वे चोंच से मार-मार कर उसे अधमरा बना डालते हैं । यही उसकी सज़ा होती है ।

कौआ हमारा सबसे अधिक जाना-पहचाना पक्षी है । कद में यह कबूतर जैसा होता है । गरदन से लेकर सीने तक सफ़ेद रंग की चौड़ी पट्टी होती है, शरीर के बाकी हिस्से का रंग काला होता है। नर और मादा की शक्ल में कोई फर्क नहीं होता। इसे देशी कौआ या घरेलू कौआ कहते हैं । इससे भिन्न है वह जिसे आम तौर पर हम 'काग' कहते हैं। कहीं-कहीं जैसे कि देश के उत्तरी भागों में इसे 'डोम कौआ' के नाम से भी पुकारते हैं। यह साधारण कौए से कद में बड़ा होता है तथा इसके सारे बदन का रंग गहरा काला और चमकीला होता है। इसकी आँखों की पुतली गहरी भूरी और पैर काले होते हैं। इसके नर और मादा में भी कोई अन्तर नहीं होता। इसकी आवाज़ सामान्य कौए से कहीं ज़्यादा कर्कश होती है तथा गाँव और वन, दोनों ही इसे समान रूप से प्रिय हैं। साधारण कौए को ग्राम और शहर ही अधिक भाते हैं।

कौआ तथा काग दोनों की आदतें प्राय: एक-सी होती हैं। पर जहाँ साधारण कौए हमेशा एक बड़ी जमात में पाए जाते हैं, काग एक साथ दो-चार से अधिक शायद ही कहीं मिलते हों।

साधारण कौए का अंडा देने का समय फरवरी से जुलाई तक है, बड़े कौए या काग का फरवरी से नवम्बर तक। काग वर्ष में दो बार अंडे देता है। छोटे कौए के अंडे नीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं जिन पर गाढ़े पीले और भूरे धब्बे होते हैं। काग के अंडों का रंग हरा होता है जिन पर गहरे बादामी रंग की चित्तियाँ पड़ी होती हैं। अंडे सेने का काम मादा और नर दोनों मिल कर करते हैं। एक जब अंडा सेता है तो दूसरा बाहर बैठकर पहरा देता है। फिर भी कोयल इन्हें चकमा देकर अपने अंडे इनके घोंसले में पार ही आती हैं, जैसा कि कोयल वाले अध्याय में बताया जा चुका है।

इनके घोंसले बड़े लेकिन बेडौल होते हैं जिन्हें बनाने में ये दुनिया भर की चुराई हुई चीज़ों का इस्तेमाल करते हैं जैसे टीन के टुकड़े, सोडावाटर की बोतलों के तार इत्यादि। कहते हैं, बम्बई में एक बार देखा गया था कि कौओं ने अपने घोंसले बनाने में कई चश्मों के सोने के फ़्रेमों का भी व्यवहार किया था जिन्हें ये पास के एक घर से चुरा लाए थे तथा जिनकी कीमत चार सौ रुपये थी। अधिकतर किसी बड़े पेड़ की चोटी पर ये अपने घोंसले बनाते हैं। ये पेड़ गाँव या शहर के बीचों-बीच भी हो सकते हैं।

कौए के घोंसले के पास जाना कभी-कभी बड़ा खतरनाक होता है। किसी को घोंसले के पास देखते ही नर और मादा उग्र रूप धारण कर लेते हैं। एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि एक बार वह किसी कौए के घोंसले से एक बच्चा चुरा कर ले चले। अभी वह रास्ते में ही थे कि उनके खुले सिर पर किसी ने ज़ोर से चोट की। मुड़ कर उन्होंने देखा कि एक कौआ सिर पर मंडरा रहा है।

वह तेज़ी से घर की ओर भागे । इतने ही में फिर उनकी बांई एड़ी पर उससे भी सख्त चोट हुई। कई महीने तक वह इस चोट के घाव से तकलीफ पाते रहे ।

कौए और काग सर्वभक्षी होते हैं। रोटी-दाल, भात, तरकारी, फल-फूल, माँस-मछली, सड़े हुए मृत पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े, अन्य पक्षियों के नवजात अंडे, खेत की फसलें—सभी कुछ चट कर जाते हैं। फसल को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों को हड़प कर ये कभी-कभी हमारी खेती की रक्षा भी करते हैं। यही कारण है कि कुछ साल पहले जंजीबार में बाहर से कौए मँगा कर खेतों में छोड़े गए थे और मलय प्रायद्वीप में श्रीलंका से जहाज़ में भरकर हज़ारों कौए भेजे गए थे ।

मानव-समाज का कौए से बड़ा घनिष्ठ संपर्क रहा है । कौए के सम्बन्ध में हमारे बीच तरह-तरह की कथाएँ प्रचलित हैं। लोकगीतों में इसका तरह-तरह से उल्लेख है तथा इनके बारे में भाँति-भाँति की सही या गलत धारणाएँ फैली हुई हैं। कहते हैं, जब कोई आने वाला होता है या किसी की खबर मिलने को होती है, तो कौआ या काग दरवाज़े पर आ-आ कर बोलता है । इसी तरह विश्वास किया जाता है कि आगे होने वाली अन्य घटनाओं की सूचना भी वह बोल-बोल कर पहले ही से दे देता है।

कौए और काग हिन्दुस्तान के प्रायः सभी हिस्सों में पाए जाते हैं—मैदानों में भी और पहाड़ी क्षेत्रों में भी। सिक्किम में १३-१४ हज़ार फुट की ऊँचाई पर भी ये पाए गए हैं, पर पहाड़ी कौए या काग की रूप-रेखा, कद आदि में मैदानी कौओं से काफी

फर्क आ जाता है। जब-तब एक खास प्रकार का कौआ भी कहीं-कहीं देखा गया है जिसका सारा बदन सफेद होता है पर यह कम ही देखने को मिलता है।

इस देश में केवल दो ही स्थान ऐसे हैं जहाँ कौए या काग नहीं होते—दक्षिण भारत में कोडाइकनाल में और उत्तर में चित्रकूट में। पता नहीं इसका कारण क्या है।

कौए के सम्बन्ध में एक रोचक कथा है। कहते हैं, एक बार वह कोयल का बाना धारण कर के चारों ओर लोगों की आँखों में धूल झोंकता फिरा। कई मास ऐसे ही बीते। जब वसंत आया तो असली कोयल ने तो पंचम स्वर में गाना आरम्भ कर दिया पर कौआ चुप रहा। फिर तो उसकी कलई खुल गई और लोग उसे दुतकारने लगे। कहा भी है कि देखने में एक-सा होने पर भी—'प्राप्तेषु वसन्त समये काकः काकः पिकः पिकः'—वसंत के आते ही यह साफ हो जाता है कि कौआ, कौआ ही है, कोयल, कोयल; यानी बगैर गुण के महज ढोंग करने से कुछ नहीं होता।

★

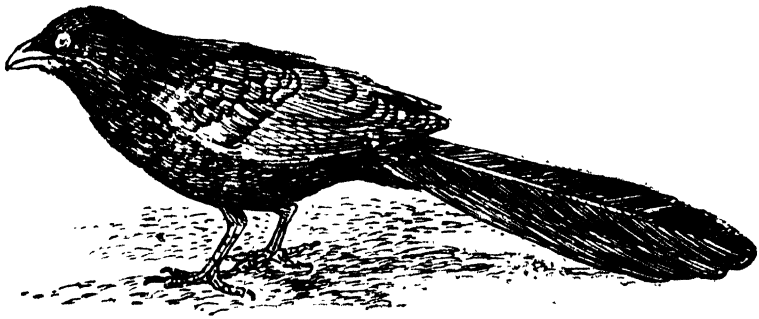

महोख

सुबह होते ही जब बस्तियों में मुर्गे बाँग देना शुरू करते हैं तब हमारे मकान के आस-पास के बाग-बगीचे और बंसवाड़ियों में महोख भी बोलना शुरू कर देते हैं। पहले एक महोख बोलता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और इस तरह अलग-अलग पेड़ों पर कई महोख बोल उठते हैं। तभी हम समझ जाते हैं कि अब सवेरा हो गया, हमें बिस्तर छोड़ देना चाहिए।

महोख उन पक्षियों में है जिन्हें हम हर रोज़ देखते भी हैं और जिनकी आवाज़ भी सुनते हैं। इसके शरीर का रंग काला तथा डैनों का गहरा कत्थई होता है। चोंच काली तथा टेढ़ी होती है। आँखें लाल और पैर काले होते हैं। दुम काफी लम्बी होती है। नर-मादा में कोई फर्क नहीं होता। इसकी बोली सुनने में कोक-कोक या हुट-हुट जैसी लगती है। यह अधिकतर पेड़ों से चिपटा हुआ कीड़े ढूँढ़ता रहता है या झाड़ियों में घुसा रहता है। जब-तब बाहर निकल कर भी घूमता है। अपनी

पूंछ के कारण जो लंबी, चौड़ी, काली तथा ऊपर बड़ी, नीचे छोटी होती है, यह तुरन्त ही पहचाना जा सकता है।

वैज्ञानिक ढंग पर यह भी उसी जाति का पक्षी है जिस जाति का कोयल, पपीहा आदि किन्तु न तो यह उनके जैसा गवैया है और न इसकी आदतें ही उनकी जैसी हैं। यह स्वयं घोंसला बनाता है। जून से सितम्बर तक इसके अंडा देने का समय है। अंडों का रंग सफेद होता है। घोंसला गुम्बज जैसा, आकार में बड़ा होता है, फिर भी जब मादा घोंसले में बैठी रहती है, उसकी लम्बी पूंछ बाहर ही निकली रहती है।

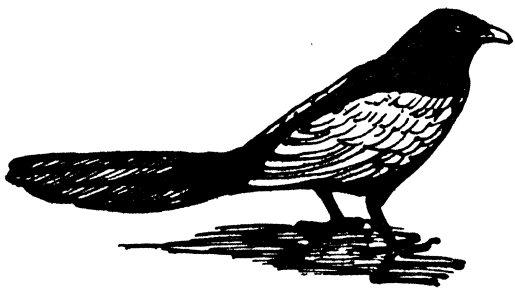

भुजंगा

कौए और कोयल के समान ही भुजंगा भी एक काला पक्षी है जो डट कर कौए से लोहा लिया करता है, कद में उससे छोटा होकर भी समय-समय पर उसे नाकों चने चबवाता रहता है। कौए सबके घोंसले से मौका पाकर अंडे चुरा ले जाते हैं पर क्या मजाल कि वे भुजंगे के घोंसले के पास जाएँ। यह उन्हें ऐसी धता बताएगा कि छठी का दूध याद आ जाए। यही वजह है कि बहुत से दूसरे पक्षी वहीं जाकर घोंसले बनाते हैं जहाँ भुजंगे का घोंसला होता है और वह बड़ी उदारता के साथ उनके घोंसलों की भी निगरानी करता है। इसीलिए भुजंगे को 'कोतवाल पक्षी' भी कहते हैं। पीलक तो खास तौर पर ढूँढ़ते फिरते हैं कि भुजंगे का घोंसला कहाँ है जिससे वह भी वहीं बसेरा बनाएँ। कहावत भी है—

रहते तरु पर संग,
पीलक और भुजंग।

एक बार मैंने देखा कि दो भुजंगे अपने घोंसले के पास बैठे हुए थे। इतने में उचक्के की तरह इधर-उधर ताकता हुआ एक कौआ वहाँ आ धमका। फिर क्या था! भुजंगों की त्यौरियाँ चढ़ गईं और वे उस पर टूट पड़े। कौआ भाग चला, भुजंगे उसका पीछा

करते हुए उस पर चोंच मारते हुए उसे दूर तक भगा आए। फिर लौट कर ऐसे बैठे मानो दंगल जीत कर पहलवान बैठे हुए हों!

भुजंगे का एक दूसरा नाम भी है--ठाकुर जी। यह इसलिए कि पौ फटते ही यह बड़े मधुर स्वर में गाना शुरू कर देता है, मानो प्रभाती गा रहा हो।

मकान के सामने के तार या खंभों पर यह अवसर बैठा रहता है। रेलवे लाइन के दोनों ओर के टेलीग्राफ के तारों पर भी बैठा हुआ मिलता है--कभी अकेला, कभी दो-चार के झुंड में।

अंग्रेज़ी में इसे 'किंग-क्रो' कौआ राजा कहते हैं। कद में यह बुलबुल जैसा होता है। रंग गहरा चमकीला काला होता है। पूंछ लंबी और दो सिरों की होती है मानो बीच से चीर दी गई हो। पूंछ के पर संख्या में दस होते हैं। नोक पर कभी-कभी सफेद चित्ती भी होती है। इसकी आँख की पुतली लाल तथा पैर और चोंच काले रंग की होती है। नर और मादा की रूप-रेखा में कोई फर्क नहीं होता।

इसका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं। हवा में उड़ते हुए पतंगों को पकड़कर यह चट कर जाता है। बहुधा शाम को यह किसी तार या खंभे पर चुपचाप बैठा रहता है। यही समय है जब कीड़े-पतंगे ज़्यादातर बाहर निकलते हैं। उन्हें देखते ही यह बिजली की तरह उन पर टूट पड़ता है और पलक मारते उन्हें गले के नीचे उतार देता है।

चरती हुई गाय, भैंस आदि पशुओं की पीठ पर बैठना इसे बहुत पसंद है। अक्सर उस पर बैठा हुआ धूप में चोंच खोले यह हाँफता हुआ नज़र आएगा।

भुजंगे का घोंसला देखने में सुन्दर प्याले के समान होता है। इसके अंडा देने का समय अप्रैल से अगस्त तक है। अंडे संख्या में चार या पाँच होते हैं तथा रंग में बिलकुल सफेद या लाल छींटों के साथ सफेद। अंडा देने के दिनों में इसका सिर हमेशा गर्म बना रहता है। बात-बात पर यह दूसरे पक्षियों से लड़ बैठता है—खासकर कौओं से।

पाँच हज़ार फुट तक की ऊँचाई के पहाड़ों पर भी भुजंगा पाया गया है। हमारे देश के प्रत्येक हिस्से में यह मिलता है। इसके नाम भी कई हैं—बंगाल में फिंगा, दक्षिण में बुचंगा, उत्तर भारत में भुजैल आदि।

इसकी बिरादरी का एक दूसरा पक्षी भृंगराज है जो कद में इससे दूना होता है। यह अधिकतर पहाड़ों पर पाया जाता है। इसके सिर पर परों की एक कलगी होती है, पूँछ टेनिस के बल्ले के आकार की काफी लम्बी तथा समूचे बदन का रंग नीलापन लिए हुए काला होता है। कहीं-कहीं भृंगराज की चोंच सफेद तथा डैनों में भी सफेदी पाई जाती है। पर ये इने-गिने ही होते हैं।

गाने में भृंगराज बहुत दक्ष होता है। इसके स्वर में अत्यन्त मिठास है। दूसरे पक्षियों के गिरोह में रहना इसे बहुत

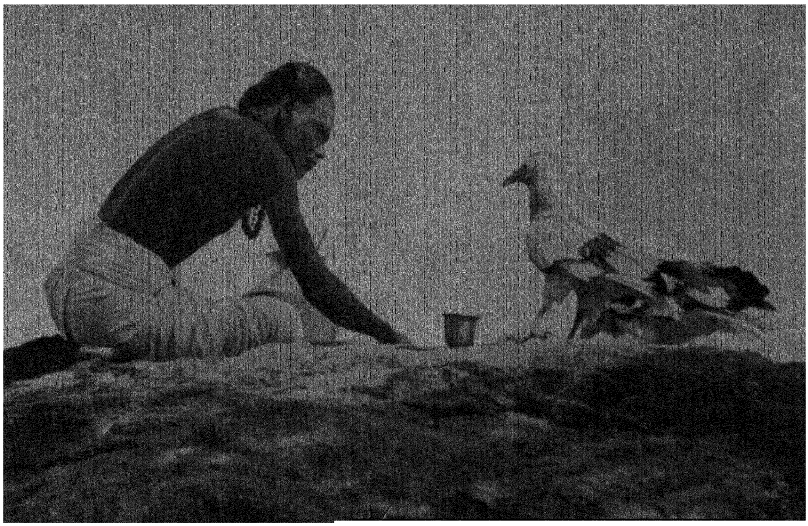

पक्षीतीर्थम की चीलों का जोड़ा

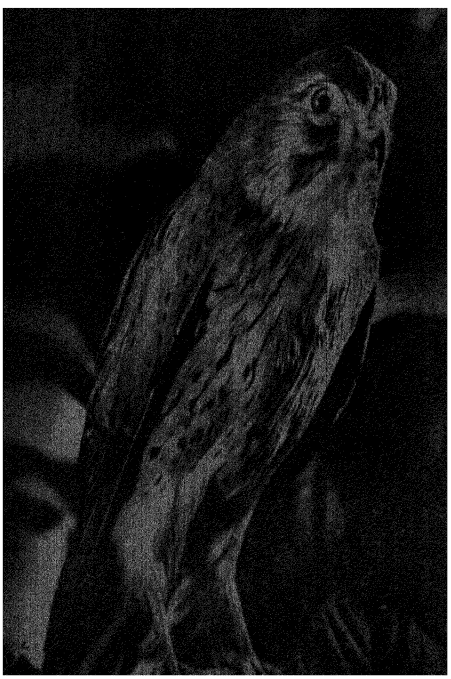

बहरी

जंगली काग

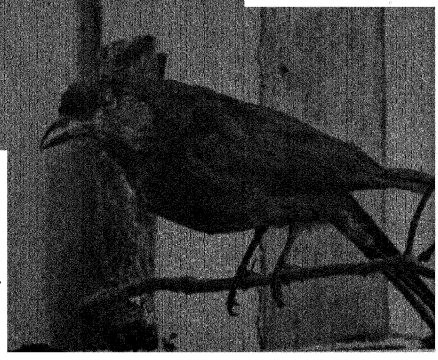

कौआ

कौआ अपने घोंसले में पहुंचता हुआ

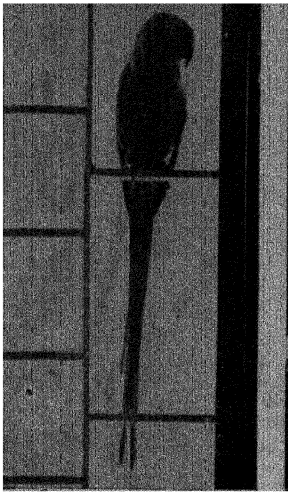

पालतू तोता

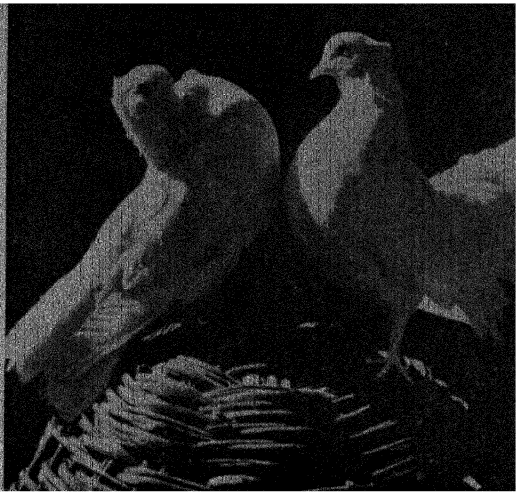

लक्का कबूतर

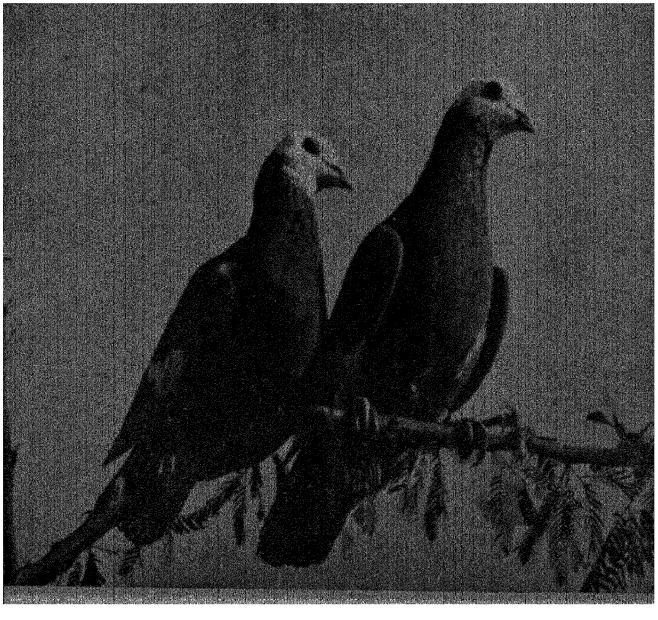

कबूतर—नर और मादा

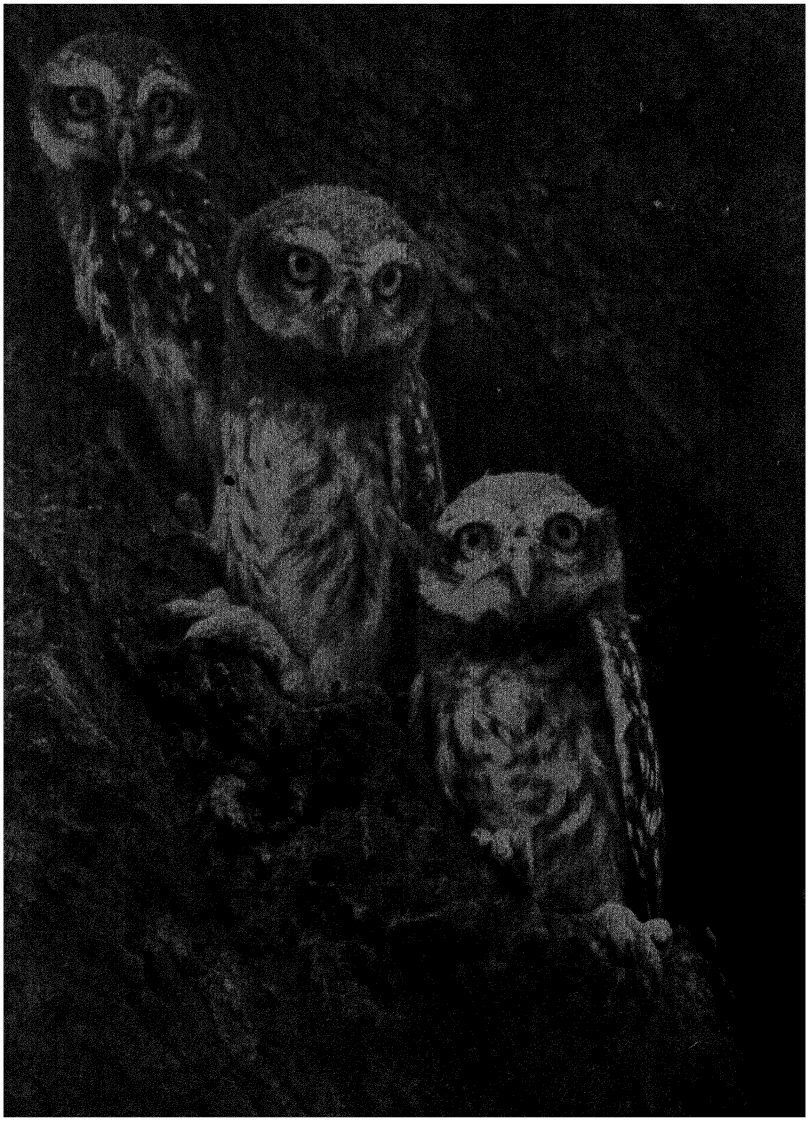

उल्लू परिवार

पसंद है तथा अन्य पक्षियों के गाने भी उनके ही स्वर-लय में यह बड़ी खूबी से गा लेता है। यही नहीं, जानवरों की बोली की भी नकल भृंगराज बड़ी खूबी से करता है और कभी-कभी दूसरों की बोलियाँ बोलकर वन के पक्षियों तथा जानवरों को बड़े अचरज में डाल देता है। कहते हैं ऐसा करने में इसे बड़ा मजा आता है।

पिंजरे में यह बडी आसानी से पाला जा सकता है। हाँ, पिंजरा बड़ा होना चाहिए तथा भोजन के लिए कीड़ों का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए। तभी यह जीवित रह पाता है तथा इसके गले में ज़ोर आता है।

पहाड़ों में रहने वाले आदिवासी इसकी पूंछ के लंबे तथा सुन्दर परों की कलगी सिर पर धारण करते हैं। ये पर देखने में बहुत सुन्दर होते हैं।

इसके अंडा देने का समय अप्रैल-मई के महीने हैं। सभी अंडे एक-से नहीं होते, पर ज़्यादातर ये सफेद रंग के होते हैं जिन पर गुलाबी चित्तियाँ होती हैं। ये बहुत कुछ बुलबुल के अंडों से मिलते हैं।

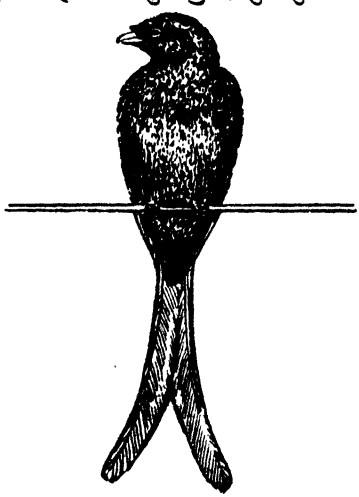

M 67 M of I & B—3

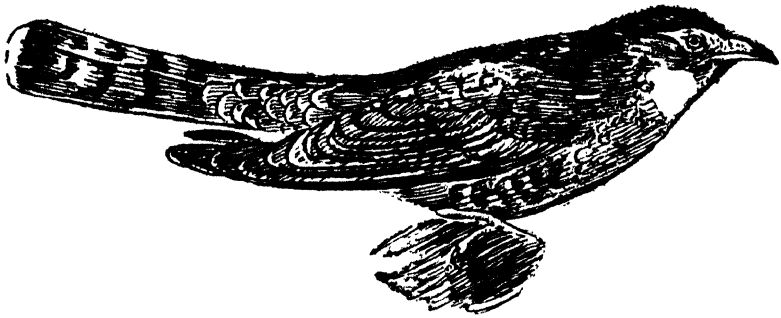

पपीहा

भारतवर्ष में गाने वाले पक्षियों में कोयल के बाद पपीहे का स्थान है। उसी की तरह यह भी वसंत के आते ही गला ऊँचा कर के गाना शुरू कर देता है। फर्क इतना है कि जहाँ ग्रीष्म ऋतु में कोयल के गले की ताकत में कमी नहीं आती, पपीहे की ध्वनि मन्द पड़ जाती है। वर्षाकाल का आरम्भ होते ही यह पुनः ज़ोरों से 'पी-पी-हो' की रट लगाने लगता है जबकि कोयल के गाने में वह पुराना ओज नहीं रह जाता। कहते हैं, यह तब तक बोलता रहता है जब तक कि स्वाति-नक्षत्र में बरसने वाले जल से इसकी प्यास नहीं मिट जाती। पता नहीं इस कथन में कहाँ तक सचाई है, पर इतना ज़रूर है कि स्वाति-नक्षत्र (कार्त्तिक-अगहन) के बाद पपीहे का बोलना एक प्रकार से रुक जाता है। जाड़ों में कोयल की तरह यह भी मौन व्रत धारण कर लेता है।

देखने में पपीहा हू-बहू शिकरे जैसा होता है—शरीर का ऊपरी हिस्सा तथा डैने सलेटी भूरे, नीचे का हिस्सा चोंच से छाती तक सफेदी लिए हुए हल्का सलेटी, पेट के पास भूरी धारियाँ,

लम्बी दुम, दुम के पास से कुछ दूर तक छोटी सफेद धारियाँ, दुम के बीचोंबीच कुछ काली और सफेद आड़ी पट्टियाँ और छोर पर एक उजली धारी, आँखें पीली, चोंच हरापन लिए हुए पीली, जिसके आगे का भाग काला, पैर पीले । यही इसकी रूप-रेखा है । लम्बाई १५ से १६ इंच तक की होती है । नर और मादा के रंग-रूप में कोई फर्क नहीं होता । कहते हैं, इसके गले में एक छेद होता है, जब यह पानी पीने लगता है तो बहुत-सा पानी इसके गले से निकल जाता है । यह फल और कीड़े-मकोड़े खाता है । रोंएदार कीड़ों को भी जिन्हें और पक्षी नहीं खाते, यह चट कर जाता है ।

पपीहे का उड़ना भी ठीक शिक्रे जैसा होता है । इसीलिए इसे पहचानना बड़ा मुश्किल होता है । पपीहे बंगाल से लेकर राजस्थान तक पाए जाते हैं । पंजाब में भी कहीं-कहीं मिलते हैं । जाड़ों में कोयल की तरह कुछ पपीहे भी दक्षिण भारत की ओर चले जाते हैं ।

पपीहे की एक और जाति है जो देखने में चमकीले काले रंग की होती है । पंख के सिरे के करीब इसके एक सफेद आड़ी धारी होती है । दुम लम्बी होती है । पेट सफेद होता है । सिर पर एक काली चोटी होती है तथा पाँव पर बाज़ जैसे पर होते हैं जो रंग में सफेद होते हैं । यह वर्षा ऋतु के आने पर बोलना शुरू करता है । भूरे पपीहे की तरह यह भी 'पी-पी-हो' ही बोलता है पर बड़े क्षीण स्वर में । आवाज़ में काफी मिठास होती है । आदतें इसकी भूरे पपीहे जैसी ही होती हैं । इसे 'चातक' कहते हैं और कहीं-कहीं 'काला-पपीहा' भी । यह जाड़ों के आते ही अफ्रीका

की ओर जहाँ सर्दी बहुत कम पड़ती है, चला जाता है पर वर्षा ऋतु के आते ही पुनः इस देश को लौट आता है। इसे लौटा हुआ देखकर ही हम समझ जाते हैं कि अब बरसात शुरू होने में देर नहीं है।

दोनों ही जाति के पपीहे साधारणतः घोंसला नहीं बनाते। चरखी के घोंसले में अंडे पार आते हैं। अंडे का रंग चरखी या सतबहिनी के अंडे के रंग के समान ही नीला होता है। दोनों के अंडा देने का समय अप्रैल से जून तक है। कई बार देखा गया है कि पपीहे अपने अंडे रखकर चरखी के अंडों को खा भी जाते हैं।

अक्सर शिशु पपीहा चरखी के दल के साथ क्वार के महीने में घूमता हुआ नज़र आता है। पर एक दिन ऐसा भी आता है जब यह उन्हें चकमा देकर नौ-दो-ग्यारह हो जाता है। वे इसे ढूंढ़ती फिरती हैं और यह किसी पेड़ पर बैठा हुआ 'पी-पी-हो' की रट लगाता रहता है।

चरखी या सतबहिनी

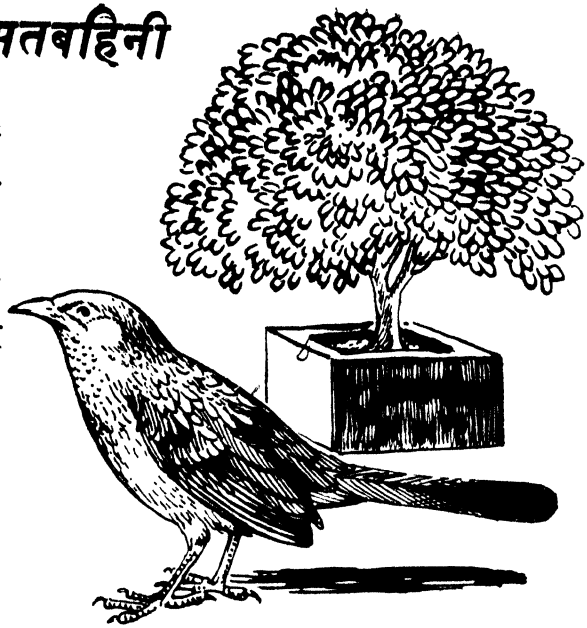

घर के आस-पास की झाड़ियों में अथवा आँगन के तुलसी के चौतरे के इर्द-गिर्द हम अक्सर मटमैले रंग की कुछ चिड़ियों को कूद-कूद कर चलते हुए देखते हैं जिनकी सूरत-शक्ल बड़ी कुरूप लगती है। यही चरखी या सतबहिनी है जिसके और भी कई नाम हैं—सतभइया, कचबचिया, छतरिया आदि। कद में यह प्रायः दस इंच की होती है जिसके बदन का ऊपरी हिस्सा गंदा मटमैला, नीचे का पीलापन लिए हुए राख के रंग का होता है। आँख की पुतली में पीलापन लिए हुए सफेदी होती है, चोंच तथा पैर प्याज़ी होते हैं जिनमें पीलापन मिली हुई सफेदी रहती है। दुम बड़ी तथा ढीली होती है जो इसके शरीर की कुरूपता को और ज़्यादा बढ़ा देती है।

उड़ने की ताकत कम होने की वजह से ही यह अपना घोंसला दस फुट से ज़्यादा ऊँचाई पर नहीं बनाती और न पेड़ ही किसी ऊंची डाल पर बैठी हुई नज़र आती है।

सिवाय इसके कि यह कीड़े-मकोड़े खा-खा कर उनकी बाढ़ को रोकती है, यह हमारे लिए किसी काम की चिड़िया नहीं है, पर इसमें कई ऐसे गुण हैं, जो हमारे लिए अनुकरणीय हैं। सतबहिनियों का सबसे मुख्य गुण उनके आपस का भाईचारा है। ये खूब लड़ती हैं, झगड़ती हैं, पर औरों के मुकाबले में एक बनी रहती हैं। समय आने पर आपस में मिलकर अपने दुश्मनों——बाज़, कौओं——का सामना करती हैं और उन्हें इनकी सम्मिलित शक्ति के सामने बार-बार सिर झुकाना पड़ता है। वैसे भी ये सदा एक साथ रहती हैं——अधिकतर सात-सात, आठ-आठ के झुंड में——और किसी साथी के पिछड़ जाने पर तब तक आगे नहीं बढ़तीं जब तक कि वह गिरोह में आकर शामिल नहीं हो जाता। यदि इसका तमाशा देखना हो तो आप किसी सतबहिनी को पकड़ कर पिंजरे में डाल दें। आप देखेंगे कि बाकी सतबहिनियाँ भी पिंजरे के पास आकर भीतर घुसने की कोशिश कर रही हैं। शायद ये इस सिद्धांत पर चलने वाली हैं कि——

सदा नर्क में साथ रहना भला है,
नहीं है भली स्वर्ग की भी इकाई।

अक्सर आप इन्हें चोंच से एक दूसरे का सिर खुजलाते या पर साफ करते देखेंगे।

ये सारे काम——बच्चों का पालन-पोषण तक——मिल-जुल कर करती हैं। एक अंग्रेज़ लेखक का कहना है कि उन्होंने एक बार छः सतबहिनियों को एक ही घोंसले में बारी-बारी से बच्चों को दाना खिलाते पाया था।

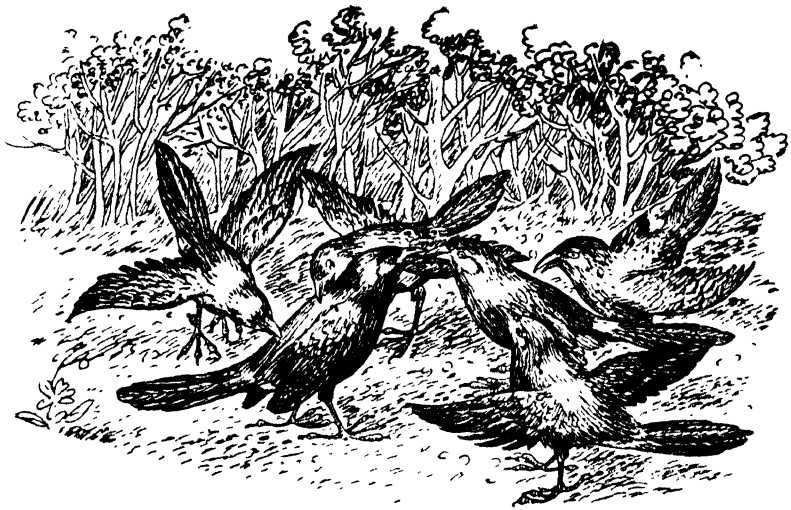

इनका दूसरा गुण इनकी हिम्मत है। ये बाज़ आदि भयंकर पक्षियों से भी बड़ी बहादुरी के साथ लड़ पड़ती हैं और उन्हें मार भगाती हैं।

ये रह-रह कर 'कचबच' शब्द करती रहती हैं और इस तरह अपने भूले-भटके साथियों को अपना पता देती रहती हैं। इनकी आदत है कि ये रात में एक-एक पहर पर ज़ोरों में 'कचबच-कचबच' बोल उठती हैं जिससे हमें समय का ज्ञान होता रहता है।

इनके अंडा देने का समय मार्च से सितम्बर तक है। अंडों की संख्या ३-४ होती है, रंग नीला होता है। पपीहे अपने अंडे इनके घोंसले में पार जाते हैं और इस तरह अंडों की यह संख्या बढ़ जाती है। ये सीधे-सादे पक्षी हैं, अतः अंडा रखने में पपीहे को कोयल की तरह चालाकी से काम नहीं लेना पड़ता। सीधे जाकर

वह अंडे पार आता है और ये खुशी से उन्हें सेती हैं और पपीहे के बच्चों को भी बड़ा होने पर साथ-साथ लिए फिरती हैं। बरसात के दिनों में अक्सर सतबहिनियों के झुंड में पपीहों के बच्चे भी घूमते-फिरते नज़र आते हैं। फिर एक दिन ऐसा आता है जब वे इन्हें छोड़कर उड़ जाते हैं और ये हाथ मलती रह जाती हैं।

सतबहिनी की भी कई किस्में हैं पर जो किस्म साधारण तौर पर हमारे यहाँ पाई जाती है, वह यही है जिसका यहाँ उल्लेख किया गया है। दक्षिण भारत की सतबहिनी कद में इससे लम्बी होती है।

आपस के मेलजोल, भाईचारे का ये हमें उपदेश देती हैं, और यही कारण है कि कोई दूसरा पक्षी इनका बाल बाँका नहीं कर सकता।

बुलबुल

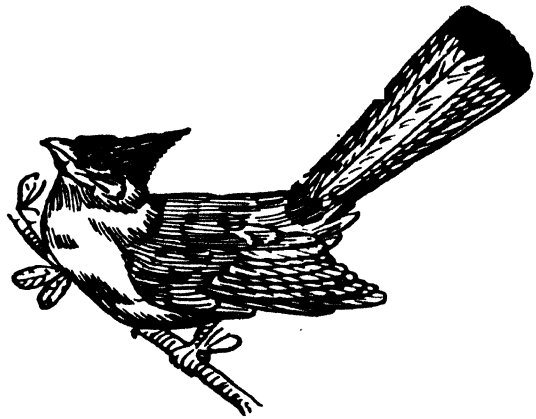

हमारे मकान के आस-पास के छोटे-छोटे पेड़ों और झाड़ियों में चहकने वाली यह चिड़िया बड़ी ही सजीव होती है, इसमें सन्देह नहीं। बुलबुल कभी देर तक एक जगह नहीं बैठती और न कभी चुप बैठती है। जब देखिए उछल-कूद रही है या चहचहा रही है।

बुलबुल के गाने का ज़िक्र किताबों में बहुत जगह आया है। बहुत से लोगों का मत है कि हिन्दुस्तान की बुलबुल गाती नहीं। केवल फारस की बुलबुल ही गाती है। यह सही है कि फारस की 'हज़ारदास्ता' बुलबुल प्रसिद्ध गायिका है, हज़ार तरह से गाती है, पर आप यदि ध्यान देंगे तो देखेंगे कि हमारे देश की बुलबुल भी शाम के वक्त अक्सर वृक्ष की डाल पर बैठी हुई बड़े मधुर स्वर में कुछ बोल रही है, गा रही है। उस समय उसका चहकना बन्द रहता है। हाँ, इतना ज़रूर है कि यह फारस की बुलबुल की तरह ज़ोर से और रात भर नहीं गाती और न उतनी ज़्यादा मिठास ही इसकी बोली में है, फिर भी शाम का इसका यह गाना कानों को बड़ा प्यारा लगता है।

फारस वाली बुलबुल कश्मीर के एक-दो इलाकों में पाई गई है। कहते हैं, नूरजहाँ ने फारस से कुछ हज़ारदास्ता बुलबुलें मँगाकर रखी थीं और यह उन्हीं की संतान है।

हमारे देश में भी बुलबुल की अनेक उपजातियाँ हैं। इनमें दो-तीन अधिक मशहूर हैं। सबसे अधिक संख्या में पाई जाने वाली बुलबुल वह है जिसे हम गुलदुम बुलबुल के नाम से पुकारते हैं। कद में यह ९ इंच की होती है। सिर पर का तुर्रा, गला और पूंछ एकदम काली होती है। शरीर का बाकी हिस्सा भूरा होता है। पीठ के पंखों का किनारा पीला, दुम का सिरा सफेद और दुम के नीचे का हिस्सा गाढ़ा लाल होता है। यह इस देश की सामान्य बुलबुल है। इसके नर-मादा में कोई फर्क नहीं होता।

दूसरी किस्म की बुलबुल 'सिपाही बुलबुल' है। इसके सिर की काली चोटी बड़ी और घनी होती है तथा दोनों गालों पर सुर्ख बालों के गलमुच्छ, दुम पर सफेद धब्बे, पीठ भूरी, छाती सफेद, पैर काले होते हैं। सिपाहियों की तरह गलमुच्छ होने के कारण ही यह 'सिपाही बुलबुल' कहलाती है।

तीसरी जाति की बुलबुल सफेद गालों वाली है जो पर्वतों पर पाई जाती है।

इनके अलावा भी और कई तरह की बुलबुलें पाई जाती हैं जिनमें एक का बदन सिवाय काले सिर के, पीले रंग का होता है। दूसरे का गला नीला और शरीर हरा होता है। दोनों ही देखने में काफी सुन्दर होती हैं।

पुराने ज़माने में मुर्गा, तीतर, बटेर आदि की तरह बुलबुल लड़ाने की प्रथा भी इस देश में ज़ोरों से प्रचलित थी। पर अब

धीरे-धीरे यह मिटती जा रही है। बुलबुलें स्वभाव से लड़ाकू होती हैं। ऐसी लड़ती हैं मानों एक दूसरे की जान ले लेंगी।

इन्हें काठ के अड्डों पर डोरे से बाँधकर रखने का रिवाज है, पिंजरों में नहीं। पालतू बुलबुलों को लोग हाथ पर बिठाकर रखते हैं। ये काफी ढीठ हो जाती हैं।

मादा साल में दो बार अंडे देती है जिनकी संख्या तीन होती है। रंग हल्का गुलाबी, बैंगनी रंग की चित्तियों से भरा हुआ होता है। घोंसला यह नीची झाड़ियों में बनाती है, कभी-कभी हमारे मकान के बरामदों के कार्निस आदि पर भी। अंडा देने का समय आम तौर पर मार्च से सितम्बर तक है।

अक्सर एक बार के अपने बनाए हुए घोंसले में यह कई साल तक अंडे दिया करती है। ऐसा ही एक घोंसला बुलबुल के एक जोड़े ने मेरे मकान के बरामदे में बना रखा है। पिछले कई वर्षों से बरसात शुरू होने के पहले यह आकर इसमें डेरा डाल देती हैं। फिर मादा अंडे देती है जो संख्या में दो होते हैं। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तब एक दिन सहसा नर-मादा पास के टेलीफोन के तार पर ज़ोर-ज़ोर से बोलना शुरू कर देते हैं जिसे सुनकर बच्चे भी घोंसले से ऊपर उठकर बोलना शुरू करते हैं। घंटे भर तक ये इसी तरह आपस में बड़ी उत्तेजना के साथ बातें करते रहते हैं—और तब बच्चे उड़कर माँ-बाप के पास चले जाते हैं, फिर सभी एक साथ पेड़ों की ओर उड़ चलते हैं। घोंसला सूना हो जाता है। इसके बाद कई दिनों तक यह सारा स्थान बड़ा सूना-सूना लगता है। बरसों से मैं यही सिलसिला देखता आ रहा हूँ। इस साल दो महीने के भीतर दो बार बुलबुलों ने आकर

इसमें अंडे दिये। इन्हीं दिनों एक दिन मैंने देखा कि एक कौआ घोंसले के पास आकर बैठ गया, फिर तो बुलबुलों का क्रोध उमड़ आया और वे उस पर टूट पड़ीं। वह भाग चला, ये अहाते के बाहर तक उसका पीछा करती हुई भाग आईं। इन्हें सफाई का कितना खयाल है, यह इस बात से ज़ाहिर होता है कि जब बच्चे अंडों से निकल आते हैं तब ये अंडों के टुकड़े चोंच में रखकर अहाते से बाहर फेंक आया करती हैं--कभी इसके भीतर नहीं गिरातीं।

बुलबुल को अपने बच्चों से बड़ा प्रेम होता है। जब उनके पर निकल आते हैं तब माँ-बाप उन्हें अपने साथ ज़ोर-ज़ोर से बोलते हुए ले चलते हैं तथा कई दिनों तक उन्हें साथ-साथ रखकर उन्हें उड़ना-बोलना सिखाते हैं।

बुलबुलों को फलों से भी खास प्रेम है। फलों के पकने पर कभी-कभी घंटे भर में ये वृक्ष के तमाम फल, यदि वे आकार में चेरी की तरह छोटे हों, चट कर जाती हैं। कभी-कभी फसल के खेत-के-खेत समाप्त कर देती हैं--नाज का दाना-दाना चट कर जाती हैं। बंगाल की एक मशहूर लोरी है जिसे माताएँ गा-गा कर बच्चों को सुलाती हैं--

छेले घुमालो, पाड़ा जुड़ालो
बरगी एलो देशे,
काल बुलबुलि ते धान खेलो
खाजना देबो किशे।

इसकी अंतिम दो पक्तियों में वह कहती हैं--कल बुलबुलें खेत के सारे धान खा गईं। अब सरकारी कर किस तरह

अदा होगा !

मतलब यह कि फसल चट करके कभी-कभी यें हमें बड़ी मुसीबत में डाल देती हैं।

ये कीड़े-मकोड़े भी बड़े चाव से खाती हैं। एक अंग्रेज़ पक्षी-विशेषज्ञ ने एक बार बिहार की एक बुलबुल का पेट चीर कर जाँच की थी तो उसमें प्रायः ३०० छोटे-छोटे कीड़े मिले थे जिनमें कुछ तो बड़े ही विषैले थे। फसल को कभी-कभी इनसे बड़ा नुकसान पहुँचता है। पर बाग-बगीचों की सुन्दरता इनसे बढ़ती है और बागों से इन्हें प्रेम भी बहुत है। हमें भी अपने देश से वैसा ही प्रेम होना चाहिए ताकि हम औरों से कह सकें कि—

सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा,
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलसिताँ हमारा।

मैना

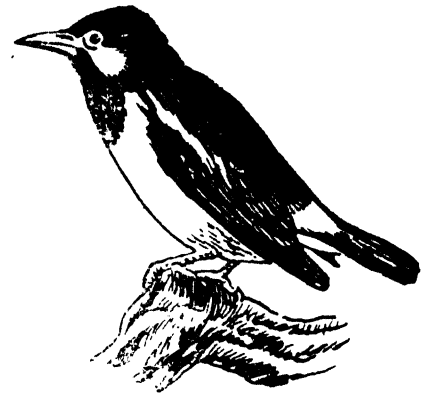

मैना इस देश के प्रसिद्ध परिचित पक्षियों में है तथा सभी भागों में पाई जाती है। वास्तव में यह भारत का अपना पक्षी है। एशिया के कुछ देशों के सिवाय और कहीं यह देखने को नहीं मिलती। इसीलिए इसका अंग्रेज़ी नाम भी मैना ही है।

इसकी बहुत-सी किस्में हैं जिनमें सबसे अधिक जानी पहचानी देशी मैना है जो सभी जगह देखने में आती है। इसे 'किलंहटा' मैना भी कहते हैं। यह प्रायः ११ इंच की होती है। नर और मादा के रूप-रंग में कोई फर्क नहीं है। यह खैरे रंग की चिड़िया है जिसका सिर, गर्दन, पूंछ और सीना काले रंग के होते हैं। पेट और डैने के कुछ हिस्से, दुम का सिरा तथा निचला हिस्सा सफेद होता है। दुम गोलाकार होती है तथा इसके बीच के दो परों के सिरे सफेद नहीं होते। आँख भूरी, चोंच तथा आँख के नीचे का उभरा हुआ गोश्त और पैर पीले होते हैं। यह नाज के दाने, कीड़े-मकौड़े आदि सब कुछ खाती है। जून से अगस्त तक इसके अंडा देने का समय है।

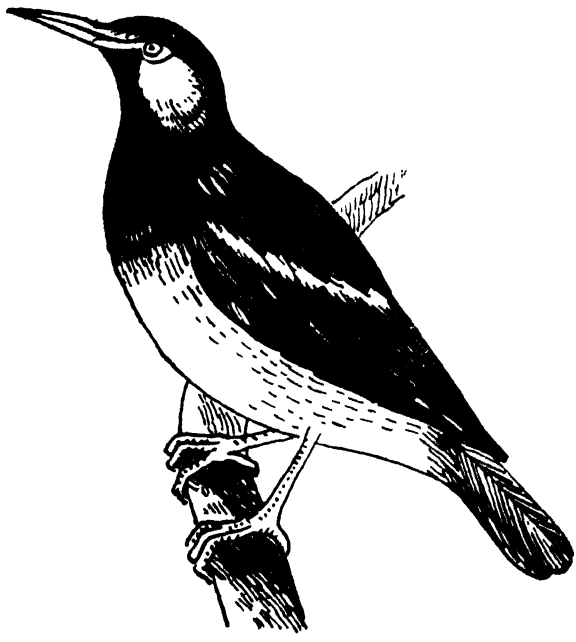

दूसरी चिड़ियों के त्यागे हुए घोंसले में या हमारे मकान में ऊपर के किसी कोने में बेडौल घास-फूस के घोंसले बना कर यह अंडे देती है । अक्सर हमारे मकानों में इसके घोंसले दिखाई देते हैं । कभी-कभी

यदि दरवाज़ा खुला रहा तो यह हमारी अलमारियों के भीतर भी घोंसला बना डालती है। इसके अंडों की संख्या चार या पाँच होती है । ये रंग में नीले होते हैं। यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है ।

दूसरे किस्म की मैना 'दरिया मैना' है जिसे 'गंगा मैना' भी कहते हैं । यह देखने में बहुत कुछ देशी मैना से मिलती है। इसकी आँख के चारों ओर का चमड़ा लाल होता है। रंग सलेटी भूरा होता है तथा डैने पर का धब्बा और दुम के परों के सिरे गुलाबी होते हैं, सफेद नहीं । नदियों के कगार में यह झुंड के झुंड घोंसले

बनाती है। इसके घोंसले की एक विचित्रता यह है कि भीतर ही भीतर एक से दूसरे में जाने के दरवाज़े होते हैं, चाहे वे घोंसले संख्या में सौ ही क्यों न हों, पर ये इन रास्तों के ज़रिए एक दूसरे से मिले होते हैं।

तीसरी जाति की मैना 'गुलाबी मैना' है जिसका सिर, सीना और डैने गहरे काले तथा शरीर का बाकी हिस्सा सुन्दर गुलाबी रंग का होता है। देखने में यह बहुत सुन्दर होती है।

चौथी यानी 'तेलिया मैना' झुंडों में हमारे यहाँ पहाड़ों से जाड़े में आती है। इसका रंग खूब चमकीला काला होता है। फूल का रस इसे बहुत प्यारा है। इसे 'तिलोरी' भी कहते हैं।

पाँचवीं जाति की मैना 'अबलखा' है जिसका शरीर काला, गाल सफेद होता है। ऊपरी हिस्सा, दुम के पर और डैने खैरापन लिए हुए काले रंग के होते हैं, दुम की जड़ के ऊपरी हिस्से पर सफेदी होती है। डैनों पर एक सफेद आड़ी लकीर होती है। बदन का निचला सारा हिस्सा हल्की बादामी झलक के साथ राख के रंग का होता है। आँख की पुतली तथा पैरों में पीलापन लिए सफेदी होती है। चोंच नारंगी–भूरी होती है जिसका निचला हिस्सा सफेद होता है। चोंच की जड़ से दोनों आँखों के नीचे होता हुआ एक गोलाकार सफेद चित्ता होता है। कद में यह गंगा मैना के बराबर होती है। घोंसला यह पेड़ों पर बनाती है––प्रायः दर्जनों एक साथ।

छठे किस्म की मैना 'पहाड़ी मैना' है जो औरों के ठीक विपरीत गाँव या शहर से दूर जंगल में रहना अधिक पसंद करती है।

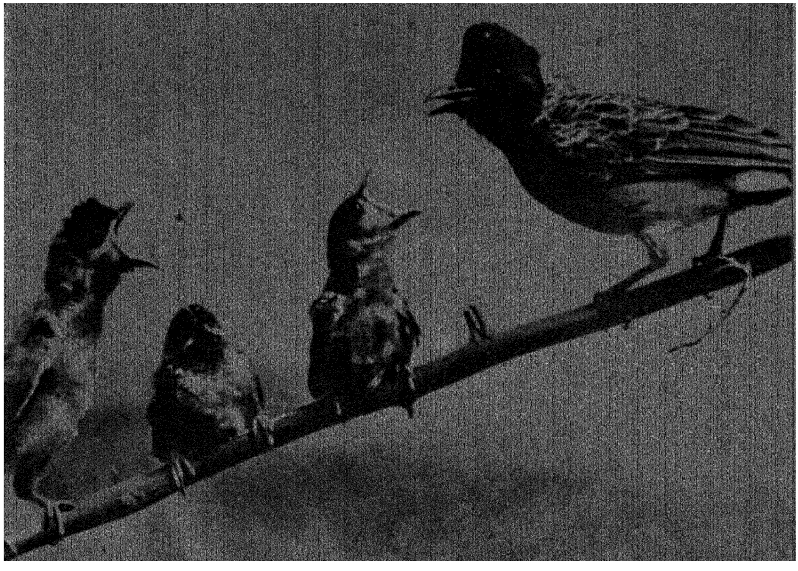

बुलबुल बच्चों को शिक्षा देते हुए

भोजन के समय बच्चों के साथ मैना

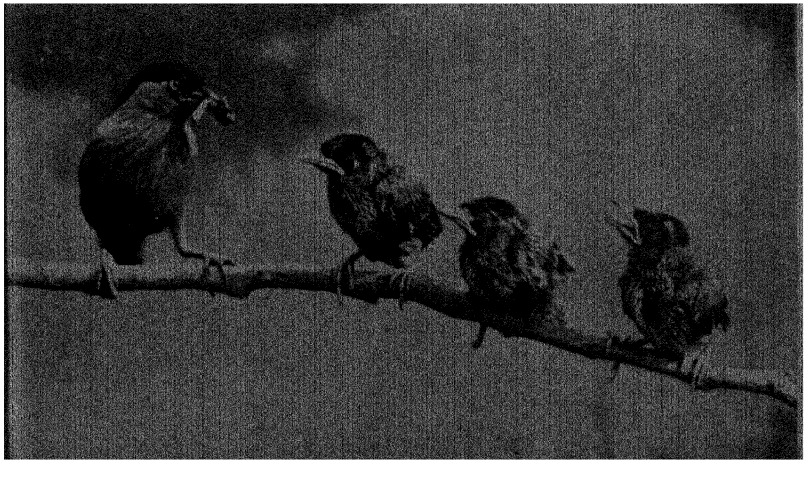

सफेद मोर

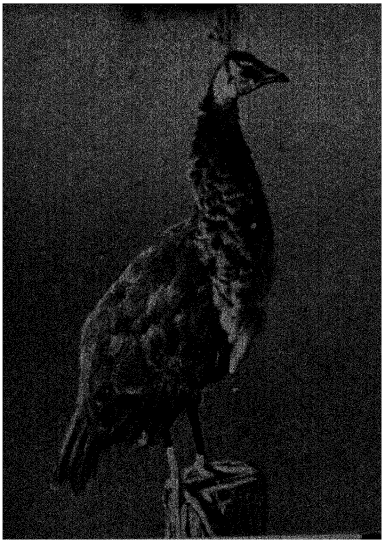

मोर का बच्चा

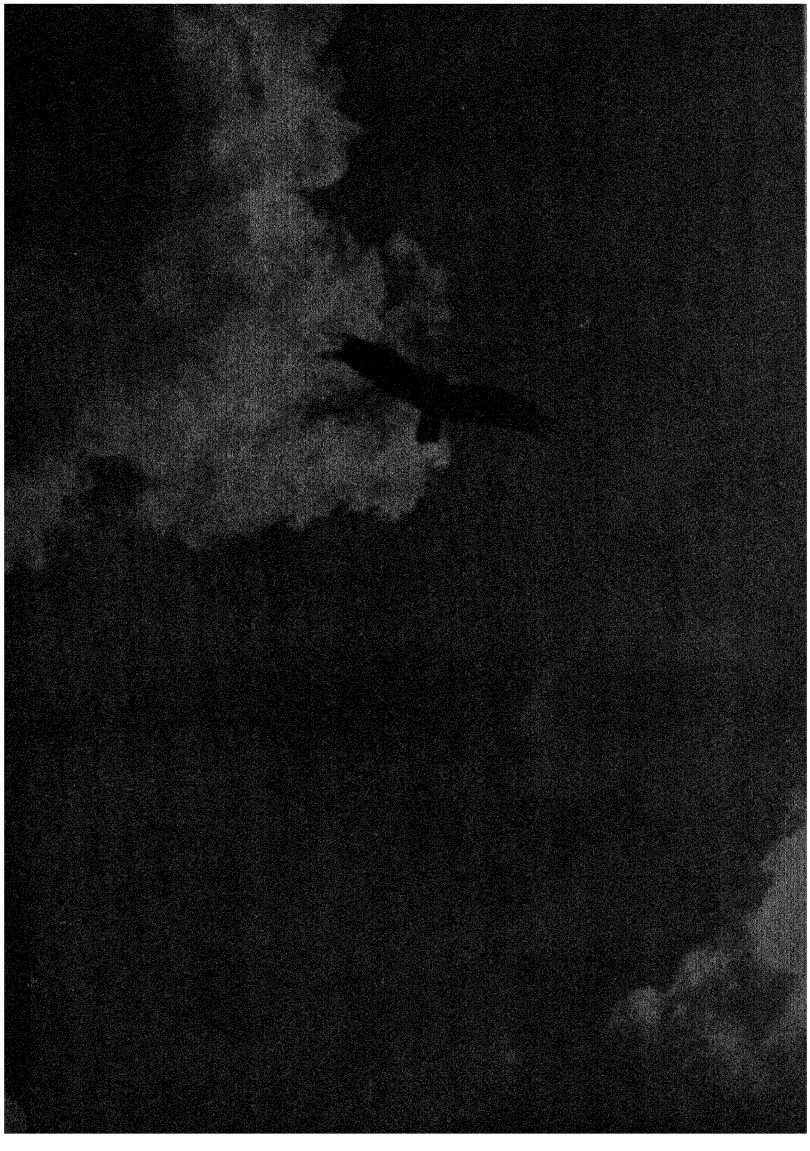

चील

पालतू कबूतर

जंगली कबूतरों
की सभा

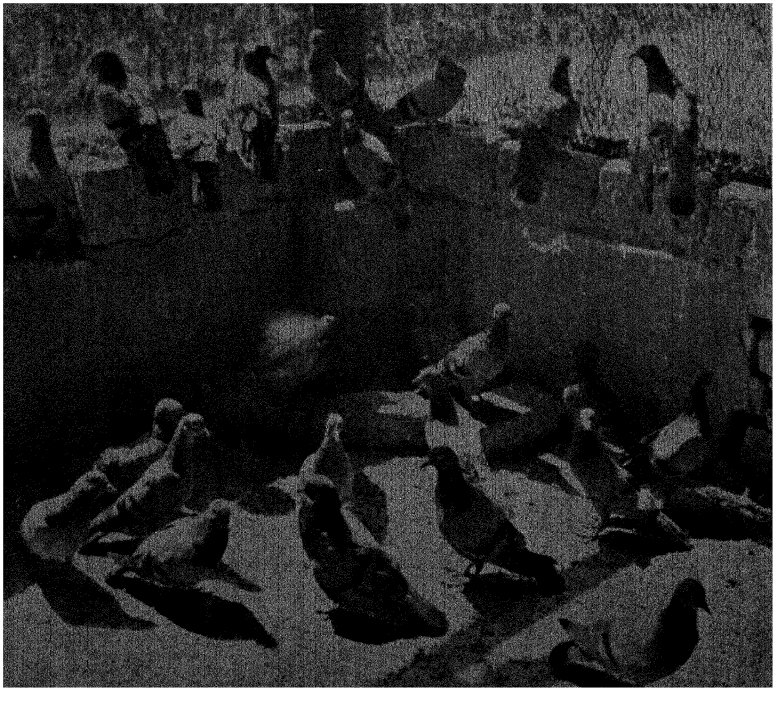

फल इसके आहार हैं। परों का रंग गाढ़ा काला होता है। डैने की जड़ पर एक बड़ा सफेद चित्ता होता है। चोंच नारंगी, आँखें काली, पैर और सिर का चमड़ा पीले रंग का होता है। नाक पर खड़े बाल होते हैं जो औरों के नहीं होते। दुम के परों के सिरे बीच के दो परों को छोड़ कर सफेद होते हैं। अधिकतर पहाड़ों पर पाई जाने वाली इस मैना की एक विशेषता यह है कि यह दूसरे गाने वाले पक्षियों के गाने बड़ी आसानी से सीख लेती है और हू-बहू उन्हीं जैसा गाती रहती है। पिंजरे में पाली जाने वाली मैना यही है जो मनुष्य की बोली, रास्ते से जाती हुई मोटर का हार्न, हारमोनियम बाजे की आवाज़ आदि की नकल भी बड़ी कुशलता से कर लेती है तथा दिन भर इसे सुनाती रहती है। शायद इसी के सम्बन्ध में किसी कवि ने दुःख भरे शब्दों में कहा था—

मैना तू बनवासनी, पड़ी पींजरे आन।

सातवीं किस्म की 'पवई मैना' है जिसे ब्राह्मणी मैना भी कहते हैं। इसका सिर काला होता है जिस पर कलगी जैसे घने काले पर होते हैं। डैनों के पर भी काले होते हैं। सिर और गले के बगल के हिस्से तथा नीचे के पर चमड़े के रंग के, जांघ तथा दुम के नीचे के कुछ हिस्से पर सफेदी होती है। गला और छाती के पर लम्बे होते हैं। शरीर का शेष हिस्सा ललछौंह भूरा होता है। दुम गोलाकार होती है जिसके बीच के दो परों को छोड़ कर बाकी परों के सिरे सफेद होते हैं।

यदि हिफ़ाज़त के साथ रखी जाए तो पिंजरे में यह काफी दिनों तक ज़िन्दा रह सकती है। खाने के लिए इसे भुने हुए

आटे की गोलियाँ दी जाती हैं या चूर्ण, पर उसमें प्याज और गोश्त पीस कर मिला देते हैं। कहते हैं, इससे इसकी जुबान में ताकत आती है तथा रोगों से रक्षा होती है। पिंजरे में रहते हुए इसे कई रोग धर पकड़ते हैं, जैसे

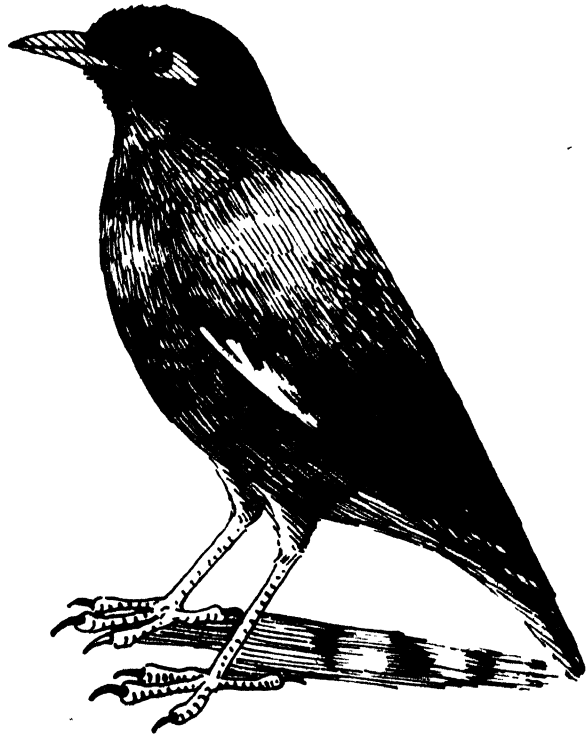

कि मुंह का घाव, जिससे प्राणान्त हो जाता है। पर यदि फौरन इलाज हुआ और खाने-पीने में गड़बड़ी नहीं हुई तो ऐसा नहीं होता।

यह पेड़ के सूराख में घोंसला बनाकर अंडे देती है। खूब जमकर गाती है। इसका गला बड़ा सुरीला होता है इसलिए इसे अक्सर पिंजरे में बन्द होना पड़ता है। लोग इसे बड़े शौक से पाला करते हैं। सीटी देने में यह दक्ष होती है। श्यामा पक्षी के पिंजरे की तरह इसके पिंजरे को भी कपड़े से ढँक कर रखने का

रिवाज है। तभी यह ज़्यादा गाती है। अन्य पक्षियों के गाने भी बड़ी ख़ूबी से सीख लिया करती है।

मैना आपस में ख़ूब लड़ती-झगड़ती हैं। पर किसी बाहरी दुश्मन के आने पर ये एक हो जाती हैं और मिलकर उसका

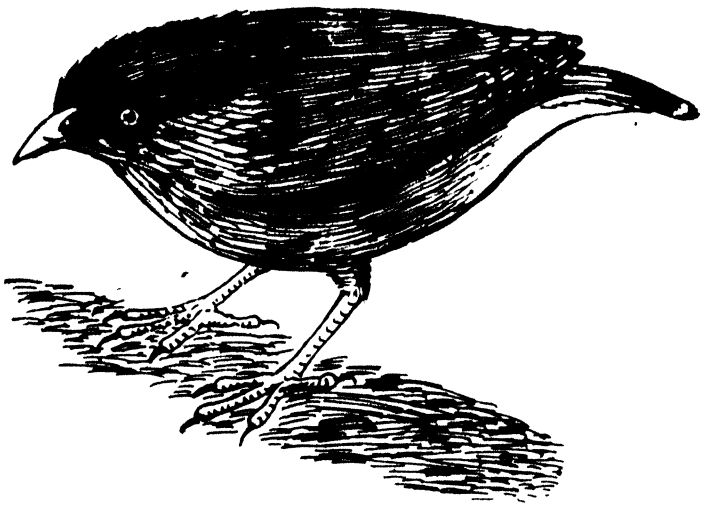

मुकाबला करती हैं। उसे देखते ही सभी एक जगह इकट्ठी होकर शोर मचाना शरू कर देती हैं। यों भी शाम के वक्त एक कतार में बैठ जाती हैं और तब तक शोर मचाती रहती हैं जब तक चारों ओर अंधकार न फैल जाए। इसी तरह बैठी हुई रात गुजार देती हैं। कभी-कभी आधी रात में सहसा ज़ोरों से शोर कर बैठती हैं। कहना मुश्किल है कि ये ऐसा क्यों करती हैं। संभव है किसी खतरे का शक होने के कारण ऐसा करती हों।

गौरैया की तरह देशी मैना भी हमारे घर में बेखटके आती-जाती रहती है। यह काफी ढीठ होती है। इसकी ढिठाई कभी-कभी हमें बहुत परेशान भी कर डालती है। अभी पिछले दिनों की बात है, मेरे 'लेटर-बाक्स' के भीतर घुस कर इनके एक जोड़े ने घास-फूस रखकर घोंसला बना डाला। मैंने इन्हें निकलवा फेंका, पर ये कब मानने वाली थीं! फिर घास-फूस इकट्ठा किया और इस तरह प्रायः दस दिनों तक इनके साथ यह झगड़ा चलता रहा। ये घोंसला बनातीं और मैं उसे बाहर फिकवाता। अंत में हार मान कर मैनाओं ने घोंसला बनाना छोड़ दिया।

मैना, गौरैया और कबूतर---इन पक्षियों को हमारे घरों से न जाने क्यों इतना प्रेम है। यदि आप दिल्ली में अपने घर के किसी कमरे की खिड़की चार दिन भी खुली छोड़ दें तो अवश्य ही इन तीनों में से कोई एक पक्षी वहाँ आकर डेरा डाल देगा।

खेत की फसल को मैनाओं से काफी नुकसान पहुँचता है। बहुत साल हुए दक्षिण अफ्रीका, मारीशस और न्यूज़ीलैंड वालों ने हमारे यहाँ से कुछ मैनाएं मँगवाईं ताकि वे फसल को नष्ट करने वाले कीड़ों को खा-खा कर उनकी संख्या बढ़ने से रोकें। अब ये स्वयं संख्या में बढ़कर फसलों का संहार करने पर तुली हुई हैं और वहाँ के लोग इन्हें मँगा कर पछता रहे हैं। खाने में इन्हें किसी चीज़ से परहेज़ नहीं है। नाज के दानों के अलावा मरे हुए पक्षियों तक को यह अपना आहार बना डालती हैं।

मैनाओं की यह एक खास आदत है कि ये दूसरे पक्षियों के खाली घोंसलों को देख कर फौरन उनमें जा घुसती हैं और डेरा

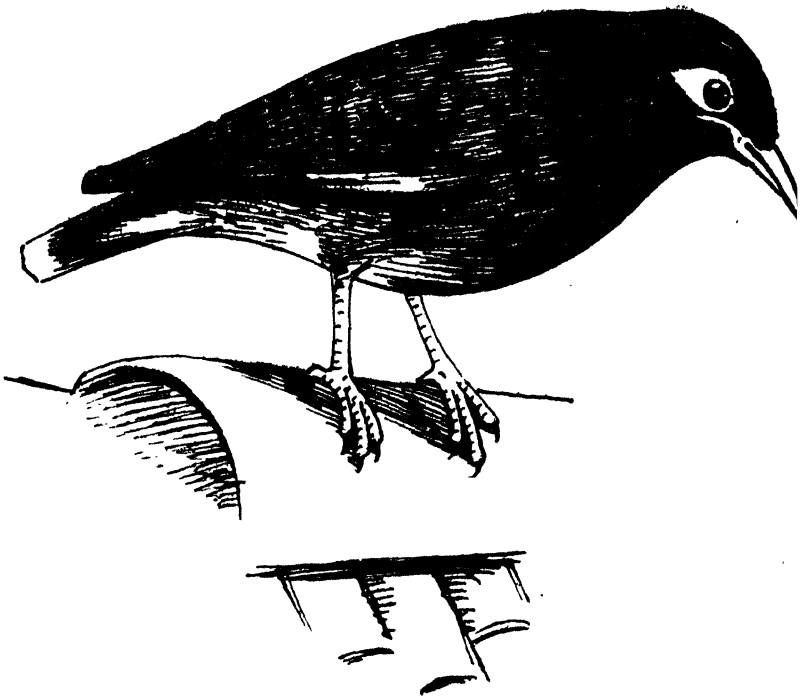

डाल देती हैं। कभी-कभी इस कारण घोंसला बनाने वाले पक्षी के साथ इनका बड़ा झगड़ा मचा करता है। उसे देखकर ये सीना तान कर खड़ी हो जाती हैं और जब-तब धक्कम-धक्का भी शुरू हो जाता है, पर अंत में जीतती यही हैं क्योंकि वह अकेला रहता है और ये संख्या में कई। धनेश पक्षी के घोंसले से शायद इन्हें बहुत प्यार है। वह खाली हुआ नहीं कि मैना का जोड़ा उसके भीतर दाखिल हुआ।

अक्सर आपस में भी इनके दंगल हुआ करते हैं, खास कर

वैशाख-जेठ में जब अंडा देने के दिन आते हैं । जभी कई एक इकट्ठी हुईं, महाभारत शुरू हुआ । चंगुल और चोंचें चलने लगीं, पंजे से पंजा बंधा और लड़ाई शुरू हो गई । दिन में कई बार ऐसी झपटें हुआ करती हैं । कभी-कभी तो ये दंगल हमारे घर या बरामदों में ही हो जाया करते हैं । उस समय ये लड़ने में इतनी व्यस्त रहती हैं कि यदि आप चाहें तो बड़ी आसानी से इन्हें पकड़ सकते हैं ।

तोता

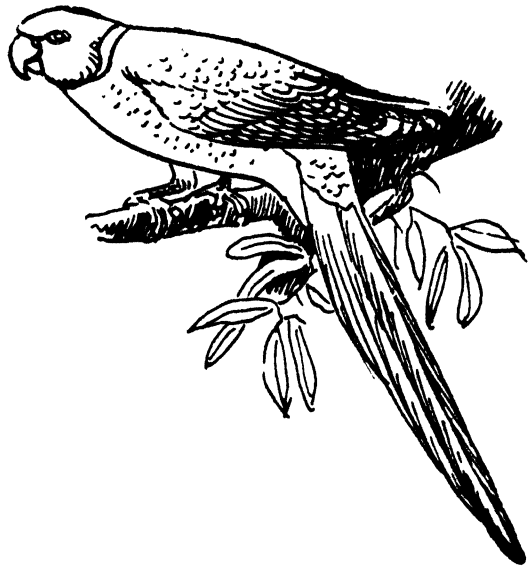

तोता पालने का चलन भारतवर्ष में सदियों पुराना है। एक समय था जब शहर और गाँव के घर-घर में इनके पिंजरे टंगे रहते थे और इसका एकमात्र कारण इनकी सीखने की शक्ति थी। यदि तोते को जो पढ़ाया जाय तो वह आसानी से पढ़ लेता है और फिर दिन रात उसे रटता ही रहता है। एक कहावत बन गयी है---'तोते की तरह रटना' जिसका अर्थ होता है किसी बात को बगैर समझे-बूझे दुहराते रहना। बोली की नकल करने में भी यह पूरा उस्ताद है। मनुष्य की बोली की यह हू-बहू नकल कर लेता है। अक्सर लोग इसे ईश्वर का कोई नाम सिखा देते हैं और यह पिंज़रे में बैठा हुआ दिन भर उसकी रट लगाता रहता है। इसकी लोकप्रियता का यह एक मुख्य कारण है। कहते हैं, पुराने समय में राजाओं के दरबार में भी तोतों के पिंजरे टंगे रहते थे। किन्तु पिंजरे में रहकर भी तोता पूरी तरह पालतू नहीं होता, प्रकृति से जंगली ही बना रहता है।

जीवन भर शहरों में रहे,
एक बात जंगल की कहे ।

ये पंक्तियाँ उसके बारे में पूरी तरह चरितार्थ होती हैं । पिंजरे में रहकर न तो उसकी आदतें ही बदलती हैं, न वन का प्रेम ही जाता है । दूसरे पक्षी यदि बहुत समय तक पिंजरे में रहें तो पिंजरे से बाहर निकल कर या निकाल दिए जाने पर काफी समय तक पिंजरे के आस-पास या घर के इर्द-गिर्द मंडराते रहते हैं, पर तोता पिंजरे से सीधा वन की ओर भागता है। जिसने वर्षों तक उसे पाला-पोसा उसकी ओर मुड़कर देखता भी नहीं। इसलिए, जो लोग कृतज्ञ नहीं होते उन्हें 'तोताचश्म' या तोते की आँखवाला कहते हैं क्योंकि तोते की तरह वह भी आँख बदल लेने वाले होते हैं। तोते हद दरजे के क्रोधी भी होते हैं। पिंजरे के तोते को यदि आप चिढ़ा दें तो वह फौरन काटने के लिए तैयार हो जाएगा और यदि आपकी उंगली पा जाए तो उसे काटे बिना न छोड़ेगा ।

तोतों की बहुत सी किस्में हैं। कहते हैं, संसार में प्रायः १६० किस्म के तोते पाये जाते हैं। हमारे देश में मुख्यतः चार किस्म के तोते मिलते हैं। ये सभी हरे रंग के होते हैं पर इनकी रूप-रेखा में थोड़ा फर्क रहता है—

१. पहली किस्म का तोता वह है जिसके शरीर का रंग हरा, चोंच लाल, ठोड़ी पर एक काला धब्बा होता है। नर के गले में एक कंठी होती है जिसका रंग ऊपर गुलाबी, नीचे लाल होता है, और गले के नीचे कालापन होता है। आँख से लेकर नाक तक एक काली धारी भी होती है। मादा की कंठी का रंग हल्का

हरा होता है। आँखें सफेद होती हैं। लम्बाई १६ इंच होती है : १० इंच की पूँछ, ६ इंच का बदन। यह इस देश का सामान्य तोता है जो अधिक संख्या में बाज़ारों में बिकता पाया जाता है। पढ़ने में यह सबसे तेज़ होता है, इसकी उड़ान भी तीर की तरह सीधी होती है।

२. दूसरी किस्म के तोते को लालटुइंया या लालसिरा कहते हैं। इसकी चोंच लाल न होकर नारंगी रंग की होती है और गरदन बैंगनी रंग की। आँखें सफेद भी होती हैं, गुलाबी भी। पंखों का रंग बिलकुल हरा न होकर गुलाबी लिए हुए हरा होता है।

३. तीसरी जाति का तोता वह है जिसे बंगाल में 'चन्दना' कहते हैं। यह देखने में नम्बर १ से मिलता-जुलता है पर कद में औरों से बड़ा होता है तथा इसके पंखों पर गहरे लाल रंग का एक धब्बा होता है। नर के गले के चारों ओर एक माला होती है जिसका रंग ऊपर गुलाबी, नीचे कंठ के पास काला होता है। मादा के यह माला नहीं होती। चोंच छोटी पर मज़बूत, मोटी, काफी मुड़ी हुई लाल रंग की होती है। इसे हीरामन तोता भी कहते हैं। यह हिन्दुस्तान के सभी भागों में पाया जाता है तथा पिंजरे में अच्छी तरह पलता है। लम्बाई प्रायः १९ इंच होती है।

४. चौथे प्रकार का वह तोता होता है जिसका शरीर छोटा, मैना के कद का, पर पूँछ काफी लम्बी होती है। बदन हरा, सिर का रंग नीलापन लिए हुए लाल होता है। पूँछ के बीच के पर नीले होते हैं जिनके आगे के हिस्से पर सफेदी होती है। डैनों पर लाल धब्बे होते हैं तथा चोंच नारंगी रंग की होती है। इसकी विशेषता

यह है कि जहाँ और तोतों की आवाज़ में टर्रापन है, इसकी कूजन में एक प्रकार की मिठास है जो कानों को बड़ी प्यारी लगती है। यह लालसिरा से बहुत बातों में मिलता-जुलता होता है। मार्च से लेकर मई तक इसके अंडे देने का समय है। बाकी तोते उत्तर भारत में मार्च-अप्रैल में, दक्षिण में जनवरी-फरवरी में अंडे देते हैं। अंडों का रंग बिलकुल सफेद होता है।

तोते घास-फूंस के घोंसले नहीं बनाते, दीवार अथवा वृक्ष के सूराखों में अंडे पारते हैं। कहते हैं, सेमल वृक्ष के कोटर में पले हुए तोते औरों से अधिक वाचाल होते हैं। सेमल की आयु बड़ी लम्बी होती है, अतएव इसमें सूराख भी ज़्यादा और गहरे होते हैं, शायद इसीलिए सेमल के वृक्ष इन्हें अधिक पसन्द भी हैं।

कलकत्ता के बाज़ार में एक छोटी जाति के तोते बिकते हैं जो बाहर से आते हैं तथा इस देश के भी कई हिस्सों में मिलते हैं। ये सबसे छोटी जाति के सुग्गे हैं जो फल के साथ-साथ फूलों के पराग और मधु का भी पान करते हैं। ताड़ और खजूर के वृक्षों पर जाकर ये चुपके से घड़ों से ताड़ी चुरा-चुरा कर पी जाते हैं। तब देर तक नशे में बेहोश, वृक्ष की डालियों पर लटके रहते हैं अथवा ज़मीन पर पड़े रहते हैं। रंग में ये घास जैसे हरे होते हैं तथा इनकी पुंछ चौकोर छोटी होती है।

भारत का कोई हिस्सा ऐसा नहीं है जहाँ तोते न मिलते हों। हिमालय की ४-५ हज़ार फुट की ऊँचाई तक ये पाए जाते हैं। ये झुंड में रहने वाले पक्षी हैं।

संसार के सभी गर्म देशों में तोते पाये जाते हैं। सर्द देशों में

ये नहीं मिलते । यूरोप में तोतों का प्रवेश सिकन्दर बादशाह के समय में हुआ जबकि हिन्दुस्तान से लौटते हुए वे कुछ तोते स्वदेश लेते गए और फिर उसके बाद तो यूनान और रोम में इनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि जहाज़ में भर-भर कर ये पूरब के देशों से यूरोप जाने लगे । तोता पालना वहाँ एक फैशन-सा हो गया ।

तोते फल और अन्न खाते हैं । खेत में खड़ी फसल पर झुंड-के-झुंड ऐसे टूटते हैं कि खेत-का-खेत चट कर जाते हैं ।

तोते की चोंच छोटी, मोटी तथा मुड़ी हुई होती है । इसके पैर में चार अंगुलियाँ होती हैं—दो आगे, दो पीछे । पाँव से यह हाथ की तरह काम लेता है । उससे खाने की वस्तु पकड़ कर खाता है । ऊपर चढ़ते वक्त तीसरे पैर के रूप में चोंच का इस्तेमाल करता है । अक्सर पेड़ की डाल में सिर नीचा कर के लटका हुआ यह झूल-झूल कर मजा लेता है । सिखाए जाने पर तरह-तरह के खेल दिखाता है, जैसे टार्च जलाना, बन्दूक चलाना इत्यादि । कलकत्ता के मेरे एक मित्र हैं । उनके पास एक तोता है जो हमेशा खुला हुआ ही रहता है । उसका व्यवहार बिलकुल पालतू कुत्ते-जैसा होता है । सुबह होते ही उनके पाँव पर धीरे-धीरे चोंच मारकर, बोल-बोल कर उन्हें जगाता है । बैठकखाने में उनके पाँव के पास बैठा रहता है । किसी बाहरी आदमी के आने पर ज़ोरों से बोलने लगता है, उड़कर उनके पास जाता है और उसकी खबर देता है । चाय से इसे खास शौक है, पर गर्म चाय ही पसंद करता है । पीता भी अपने ही प्याले में है । किसी और प्याले में देने पर रूठ कर बैठ जाता है । लोग इसके मनुष्य-जैसे व्यवहार से बड़े चकित होते हैं ।

तोते की उमर बड़ी लम्बी होती है। कहते हैं, यह ६०-७० साल तक ज़िन्दा रह सकता है।

तोते और मनुष्य का इस देश में बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है तथा यहाँ की लोक-कथाओं में इसने प्रमुख स्थान पाया है। हीरा-मन तोता की कहानी इस देश के बच्चे-बच्चे तक जानते हैं।

अमीर खुसरो के बुझौवल मशहूर हैं। तोता सम्बन्धी उनका अब एक बुझौवल देखिए—

सबज रंग औ मुख पर लाली,
उस पीतम गल-कंठी काली,
भाव-कुभाव जंगल में होता,
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, तोता।

क्या तुम बताओगे कि यहाँ अमीर खुसरो ने किस जाति के तोते की चर्चा की है ?

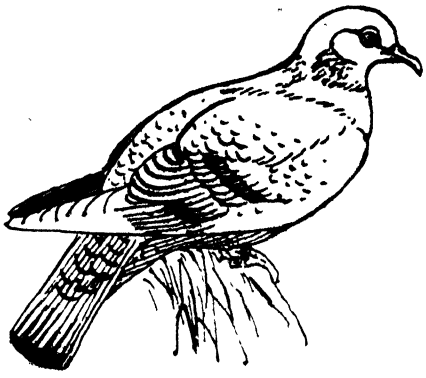

कबूतर

कबूतर एक ऐसा पक्षी है जो पेड़ों पर नहीं बल्कि हमारे घरों में रहता है। देश के सभी हिस्सों में यह पाया जाता है। बर्फ से ढकी कश्मीर की अमरनाथ गुफा तक में सैकड़ों वर्षों से कबूतर का एक जोड़ा तीर्थयात्रियों को नज़र आता रहा है। सामान्य कबूतर को उत्तर भारत में 'खौदा कबूतर' कहते हैं। उसके नर मादा का रंग-रूप एक-सा होता है—बदन का रंग सलेटी, गर्दन पर चमकीले हरे पंखों का एक कंठा, इसके नीचे चारों ओर एक बैंगनी रंग की पट्टी, पीठ और डैनों का रंग गहरा तथा उन पर दो-तीन आड़ी पट्टियाँ, दुम का छोर काला और उसके दोनों ओर सफेद धारी होती है। इसकी आँखों की पुतली नारंगी, चोंच के सिर पर कालापन, जड़ पर सफेदी तथा पैर गहरे गुलाबी रंग के होते हैं।

इसके सिवाय भी कबूतर की कई किस्में हैं जो आम तौर पर सब जगह नहीं पाई जातीं। इन्हें कबूतर के शौकीन लोग ही पालते हैं। मुसलमान बादशाहों के समय में कबूतर पालने का रिवाज इस देश में बढ़ा और शायद उन्हीं दिनों कई पालतू कबूतर बाहर से लाए गए। इनके रंग तरह-तरह के होते हैं—काला, हरा, गुलाबी, सफेद, चितकबरा इत्यादि। इसमें मुख्य पाँच हैं—

'गिरहबाज' जो गिरह मारते हुए सुदूर आकाश में उड़ जाते हैं तथा सुबह के गए शाम को लौटते हैं। 'लोटन' जो ज़मीन पर लोटते हैं, 'शीराजी' 'तथा बगदादी' जो शिराज और बगदाद के शहरों से किसी ज़माने में आए थे और देखने में बड़े सुन्दर होते हैं। 'मुक्खी' जिसका सिर काला,बदन सफेद होता है तथा 'लक्का' जिसकी पूँछ खड़ी, हाथ के जापानी पंखे जैसी होती है। एक और प्रकार का कबूतर होता है जिसका गला मुँह में हवा देने से बैलून-जैसा फूल जाता है।

ये सभी पालतू कबूतर हैं। आज़ादी से रहने वाला कबूतर वह है जो सलेटी रंग का होता है तथा मकान की कार्निसों, छज्जों आदि पर घास-फूस रख कर अंडे देता है। बड़ी-बड़ी इमारतों में ये सैकड़ों की संख्या में एक साथ रहते हैं। बम्बई में जैन मत के सेठ-साहूकारों की ओर से प्रति दिन कबूतरों को दाना चुगाया जाता है और ये हज़ारों की संख्या में आ-आ कर दाना चुगते हैं।

कबूतर साल भर अंडे देते रहते हैं। इनके अंडे रंग में सफेद होते हैं। पेट से एक प्रकार का दूध जैसा तरल पदार्थ निकाल कर ये चोंच से बच्चों को पिलाया करते हैं। अन्य कोई पक्षी ऐसा नहीं करता, यह कबूतर की ही विशेषता है।

कबूतर चिट्ठी ले जाने का काम सदियों से करते आए हैं। जहाँ ये पलते हैं वहाँ से सैकड़ों मील पर भी ले जाकर छोड़ देने से ये अपने रहने की जगह पर लौट आते हैं। लड़ाई के मैदान से ये लड़ाई की खबरें पहले भी ले आया करते थे, आज भी ले आते हैं। कहते हैं, बादशाह अकबर ने ऐसे बीस हज़ार कबूतर

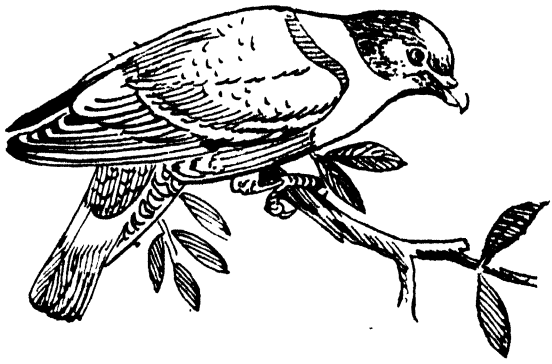

पाल रखे थे जो डाक लाने का काम किया करते थे।

कबूतर के पाँव की तीन उंगलियाँ आगे की ओर और एक पीछे की ओर होती है। सिर छोटा होता है। कहा जाता है कि इसके पंख की हवा, हृदय रोग के रोगियों के लिए बड़ी फायदे की होती है तथा लक्का कबूतर का माँस खाने से लकवा की बीमारी में लाभ पहुँचता है।

कबूतर के नर-मादा का सम्बन्ध जीवन-भर का होता है। दोनों दिन रात साथ रहते हैं। इनमें गहरा प्रेम होता है।

कबूतर आदमी से घबराते नहीं, दाना चुगते हुए निर्भय होकर हमारे पास तक चले आते हैं। बच्चे इन्हें पकड़ लेते हैं, फिर भी ये भागते नहीं, फिर उनके पास चले आते हैं। पालतू कबूतर बहुधा हमारी मेज़ पर आकर बैठे रहते हैं। हम इन्हें पकड़ कर इनके सिर पर हाथ फेरते हैं तो ये पालतू कुत्तों की तरह सिर झुका लेते हैं, खुश होते हैं, उड़ते नहीं।

★

पंडुक

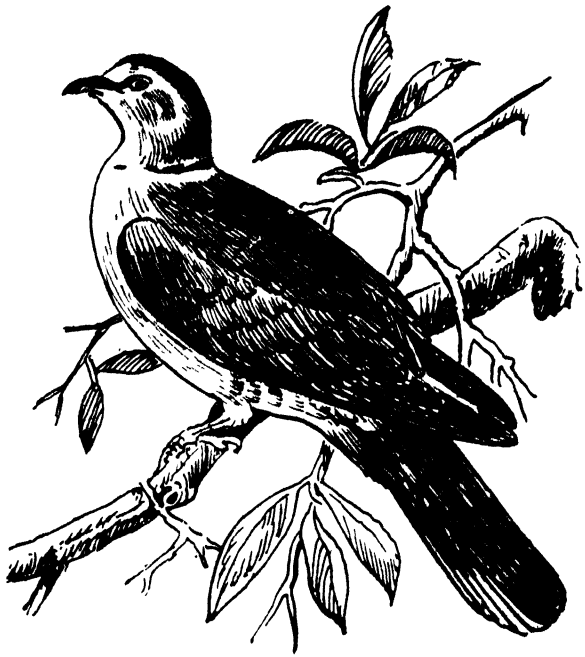

पंडुक की शक्ल-सूरत और आदतें कबूतर से बहुत मिलती हैं। यह देखने से ही भोला-भाला मालूम पड़ता है। नर-मादा हमेशा साथ-साथ रहते हैं। सामान्यतः यह वृक्ष पर रहता है, पर दिन भर हमारे घर के आस-पास दाना चुगा करता है। कभी-कभी हमारे घर के किसी हिस्से में घोंसला तक बना डालता है।

इसकी भी कई उप-जातियाँ हैं जिनमें मुख्य ये हैं—

१. **काल्हक**—यह कद में सबसे बड़ा होता है, कबूतर-जैसा। इसका सिर, गर्दन, शरीर का ऊपरी हिस्सा ललछौंह भूरा, नीचे का हल्का कत्थई होता है। गर्दन के दोनों तरफ काली चित्तियाँ और डैनों पर निशान बने होते हैं। दुम भूरी होती है जिसके सिरे पर गाढ़ा कत्थई रंग होता है। पंडुकों में यह सबसे अधिक शर्मीला होता है।

आँख की पुतलियाँ नारंगी, चोंच भूरी, पाँव और पंजे लाल रंग के होते हैं। इसके अंडों का रंग सफेद होता है।

२. **चितरोखा**—यह काल्हक से ज़्यादा खबसूरत होता है। सिर का रंग ललछौंह सलेटी, गर्दन के ऊपर से पीठ तक सफेद बिन्दियों से भरा हुआ काला रंग, बाद का हिस्सा भूरा जिस पर हल्की कत्थई चित्तियाँ और लकीरें शोभा पाती रहती हैं। डैने और दुम का बिचला हिस्सा भूरा होता है। दुम के दोनों किनारे काले और सफेद होते हैं। गला और दुम का निचला हिस्सा सफेद, बीच का हिस्सा ललछौंह कत्थई होता है। आँख की पुतली हल्की भूरी होती है। पैर बैंगनी रंग लिए हुए लाल, चोंच काली होती है।

३. **धवर**—इसका रंग राख के रंग का होता है। सिर पर फालसई रंग की झलक तथा गले पर सफेद और काले रंग की एक कंठी होती है। कद में चितरोखा के बराबर होता है। इस देश में यह सबसे अधिक संख्या में मिलता है।

४. **टुटरूँ**—यह ऊपर के तीनों किस्म के पंडुकों से कद में छोटा होता है। इस में हल्के फालसई और ललछौंह रंग की प्रधानता है। गर्दन के दोनों ओर सफेद बिन्दियों से भरी हुई काली पट्टियाँ होती हैं। शरीर के नीचे का हिस्सा सफेद होता है। ढिठाई में यह सबसे बढ़ा-चढ़ा है तथा दाना चुगते हुए हमारे बरामदे तक में घुस आता है। यही नहीं, हमारे घरों में घोंसले तक बना डालता है।

५. **ईंटकोहरी**—यह कद में सबसे छोटा है। पर इसकी बोली सब से अधिक सुहावनी होती है। रंग ईंट जैसा होता है। नर और मादा में फर्क रहता है। नर का सिर सलेटी, गर्दन पर काली कंठी, ऊपर का हिस्सा ईंट के रंग का, डैनों के सिरे कत्थई रंग के होते

M67 M of I & B—5

हैं। दुम की जड़ सलेटी, बीच का हिस्सा भूरा होता है जिसके किनारे काले और सफेद होते हैं। अन्य पंडुकों के नर-मादा में कोई फर्क नहीं होता पर इसकी मादा नर से भिन्न होती है।

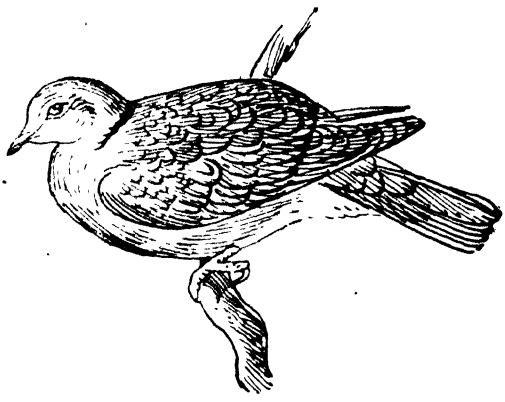

मादा राख के रंग की होती है। सिर, डैनों और दुम के निचले हिस्से में नर की तरह का भूरापन रहता है।

पंडुक आमतौर पर टुँटरू-टूँ बोला करते हैं। दाना चुग कर जीवन बसर करते हैं। साल में छः-छः बार तक अंडे देते हैं जो रंग में सफेद होते हैं। इनके घोंसले मचान-जैसे बेढंगे बने हुए होते हैं जिसके नीचे से अंडे-बच्चे साफ़ नज़र आते रहते हैं। अंग्रेज़ी की एक कविता है जिसमें पंडुक को संबोधन कर के कवि ने कहा है—"कौए अपने निश्चित समय पर घोंसले बनाते हैं, चंडूल समय आने पर ही जोड़ा बाँधते और अंडे पारते हैं, सभी पक्षियों का यही हाल है। पंडुक! तू ही एक ऐसा पक्षी है जो हर मौसम में अंडे दिया करता है।" बात बिलकुल सही है। ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइबिल में इनकी जगह-जगह चर्चा है, अतएव ईसाई इन्हें पवित्र पक्षी मानते हैं, शान्ति का दूत समझते हैं और भूलकर भी इनका शिकार नहीं करते। बाइबिल में लिखा है कि जब प्रलय के जल में

सारी पृथ्वी डूब गई, केवल भगवान की इच्छा से नोह नामक एक व्यक्ति, जो बड़ा धर्मात्मा था, एक नाव में बच रहा, तब कुछ दिनों के बाद नोह ने पंडुक ही को यह देखने को नाव के बाहर भेजा था कि पृथ्वी के किसी हिस्से से जल

हटा है या नहीं । पंडुक ने तीसरी बार लौट कर बताया कि हाँ, कई जगहों से जल हट गया है, तभी नोह ने नाव से निकल कर पृथ्वी पर पाँव रखा, घर बसाया और फिर पृथ्वी पर मनुष्य का वंश नोह के द्वारा बढ़ा ।

इस देश में पंडुक के अनेक नाम हैं जैसे फाख्ता, पेंडकी, घुग्घी, बिनता आदि । स्वभाव सब का एक-सा है । कबूतर की ी तरह नर जब आनन्दित होता है तो नाचने लगता है, नाच-नाच कर मादा को खुश कर लेता है । कहा भी है--

नाचहिं पंडुक, मोर, परेवा,
विफल न जाय काहु कै सेवा ।

पंडुक के नर-मादा जीवन भर साथ-साथ रहते हैं । इनके जैसा नर-मादा का प्रेम शायद ही किसी और पक्षी में होता हो । एक बार का किस्सा है कि मेरे एक मित्र ने दाना चुगते हुए पंडुकों में से एक को बन्दूक से मार दिया । वह नर था । मादा बजाय इसके कि वहाँ से उड़ भागे, नर के पास ही बैठी रही और बड़े करुण स्वर में बोलती रही । उड़ा देने पर भी फिर तुरन्त वहीं आ कर बैठ गई । इस करुण दृश्य को देख कर मुझे बड़ा दुख हुआ और मैंने संकल्प किया कि फिर कभी पंडुक के शिकार में शामिल न हूँगा ।

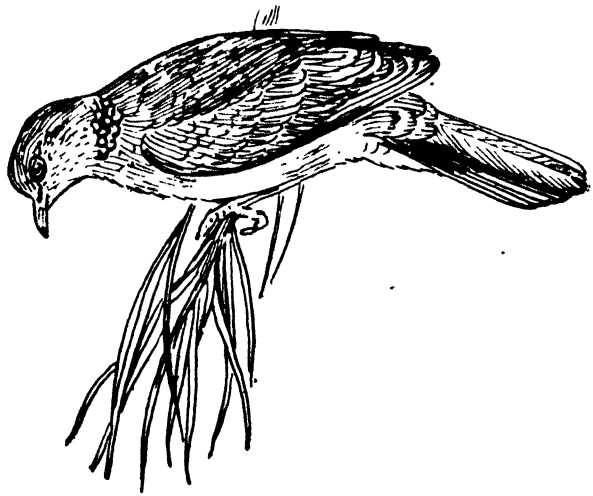

चील

कौआ केवल बच्चों के हाथ से रोटी छीन लिया करता है पर चील सयानों के हाथ से भी ले भागती है। झपट्टा मारने में चील मशहूर है। यह अक्सर हमारे मकान के ऊपर आकाश में मँडराती रहती है और खाने की किसी चीज़ को देखते ही नीचे उतर आती है, उस पर बिजली की तरह टूटती है और पलक मारते उसे ले उड़ती है। यही है वह 'चील झपट्टा' जो एक कहावत बन गई है।

चील इतने ज़ोर से झपट्टा मारती है कि कभी-कभी अपने पंजों की चोट से हमें घायल तक कर जाती है। खाने की वस्तु ही नहीं, जेवर तक हाथ से छीन ले जाते इसे देखा गया है।

माँस-मछली का इसे खास शौक है और उनकी दूकानों के पास तो यह इस ताक में दिन भर मंडराती रहती है कि मौका मिले और वह उन्हें ले भागे। कभी-कभी अन्य पक्षियों के बच्चों को भी यह चुरा ले जाती है। चूहे, गिरगिट आदि बड़े शौक से खाती है। ऊपर से यदि यह उन्हें देख ले तो फिर उनकी खैर नहीं। पलक मारते ही नीचे आकर इन्हें पंजों में दबोच कर किसी

वृक्ष पर जा बैठती है और चट कर जाती है। चील अपना शिकार चोंच से पकड़ने की बजाय अपने फौलादी पंजों से पकड़ती है, और जब यह शिकार लेकर चलती है, कौए रास्ते में उसे छीनने की कोशिश करते हैं। कौए इससे डाह करते हैं जैसा कि एक ही पेशे वालों के बीच आपस में अक्सर हुआ करता है। दोनों की एक-सी करतूतें हैं, खासकर डाका डालने में दोनों ही सिद्धहस्त हैं।

चील को भी कई उपजातियाँ हैं जिनमें दो मुख्य हैं—भूरी या काली और खेमकरी। खेमकरी के और भी कई नाम हैं जैसे खैरी, शंकर, धोबिया, शाह-मुबारक, ब्राह्मणी चील आदि। चील को चिल्होर भी कहते हैं।

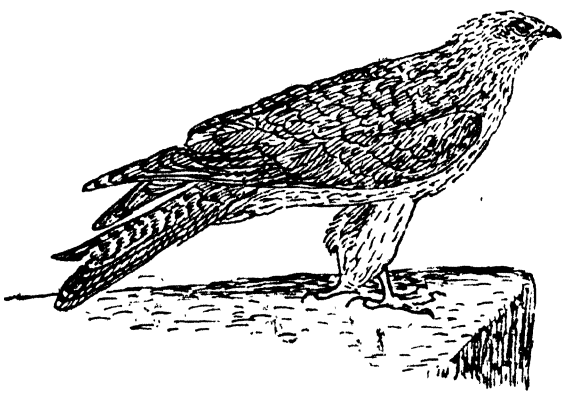

काली चील खैरी से कुछ बड़ी होती है, करीब

दो फुट की और इसके नर-मादा में कोई फर्क नहीं होता। इसका ऊपर का सारा हिस्सा भूरा रहता है, डैनों का भूरा रंग ज़्यादा गहरा होता है, सिर के ऊपरी हिस्से से गर्दन तक पीलापन लिए भूरा रंग होता है और दुम के निचले हिस्से में सफेदी लिए हुए भूरापन रहता है। इसकी आँख की पुतली भी भूरी होती है और पैर पीले होते हैं। चोंच और पंजों का रंग काला होता है।

बाज़ार के बीचोंबीच ताड़ आदि के ऊँचे दरख्त पर इसका भद्दा-सा घोंसला बना रहता है। इसके अंडा देने का समय दिसम्बर से मई तक है। दोनों किस्म की चीलें बादामी रंग लिए हल्के सलेटी रंग के अंडे देती हैं जो संख्या में दो या तीन होते हैं। काली चील के अंडों पर लाल, बैंगनी और बादामी चित्तियाँ पड़ी होती हैं।

चील की आवाज़ बड़ी तेज होती है, उड़ते हुए या बैठे हुए यह 'ची-इ-इ-इ' बोलती रहती है। भारत के सभी भागों में, ८००० फुट ऊँचे पहाड़ों पर भी, यह पाई जाती है।

खैरी चील को दक्षिण भारत में गरुड़ भी कहते हैं। इसका सिर, सीना और गर्दन सफेद होती है, शरीर के बाकी सभी हिस्से खैरे रंग के। डैनों का कुछ हिस्सा काला रहता है, दुम का सिरा सफेद। आँखों की पुतली भूरी, चोंच पीलेपन की झलक के साथ सींग के रंग की, पैर पीले होते हैं। चोंच टेढ़ी होती है। नर-मादा

एक-से होते हैं। दक्षिण में एक तीर्थस्थान है जिसे 'पक्षीतीर्थम' कहते हैं। यहाँ हर रोज़ ठीक दोपहर के समय सुदूर आकाश से खैरी चील का एक जोड़ा उतर कर आता है और पुजारी के हाथों से प्रसाद ग्रहण करता है, फिर उड़कर जिस दिशा से आया था उसी दिशा को चला जाता है। बहुत से यात्री इसके दर्शन के लिए वहाँ पहले से उपस्थित रहते हैं। कहते हैं, भगवान का प्रिय वाहन गरुड़ यही है जिसका हिन्दू शास्त्रों में उल्लेख है। अतएव इनके दर्शन से पुण्य मिलता है। पता नहीं इसमें कितनी सच्चाई है पर इतना जरूर है कि हज़ारों वर्षों से यहाँ यह क्रम चल रहा है। यह उसी प्रकार की आश्चर्यजनक घटना है जैसी कि अमरनाथ की बर्फीली गुफा में, जहाँ मीलों तक कोई आबादी नहीं है, सैकड़ों साल से कबूतर के एक जोड़े का देखा जाना।

बाज़, बहरी, शिकरा

ये वे पक्षी हैं जो पक्षियों ही का शिकार करते हैं तथा शिकार की खोज में हमारे घर के आसपास के वृक्षों पर चक्कर लगाया करते हैं। इन सब की मादा शिकार करने में नर से ज़्यादा तेज़ होती है और कद में बड़ी भी। बाज़ सबसे बड़ा है जिसके शरीर का रंग ऊपर भूरा, नीचे काली और भूरी लकीरों के साथ सफेद होता है। इसकी मादा 'जुर्रा' कहलाती है। पुराने ज़माने में देश-देश के राजे-महाराजे बाज़ पालते थे और उसे दस्ताना पहने हुए हाथ पर लिए फिरते थे। इससे वे चिड़ियों का शिकार करते थे। इंगलैंड की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम को बाज़ की सहायता से पक्षियों का शिकार करने का बड़ा शौक था, हमारे यहाँ अकबर और जहाँगीर बादशाहों को भी इस प्रकार शिकार करना बहुत प्रिय था।

बाज़ के बाद बहरी का दर्जा है जो शिकार करने में सब से आगे रहती है। यह आसमान में उड़ते हुए बतखों तक को पकड़ लाती है। इसकी भी कई उप-जातियाँ हैं, जैसे कि तुरमुति, लगर,

खेरमुतिया आदि। तुरमुति मादा को कहते हैं। इसका नर 'चेटवा' कहलाता है। देखने में दोनों एक-से होते हैं। इनके सिर का ऊपरी हिस्सा तथा गर्दन के आस-पास का रंग धूमिल लाल होता है। बदन का ऊपरी हिस्सा भूरी धारियों के साथ सलेटी होता है। पेट सफेद होता है। भूरी दुम पर काली आड़ी लकीरें होती हैं। इसके अंडे गुलाबी झलक लिए हुए सफेद होते हैं। लगर का ऊपरी हिस्सा भूरा, नीचे का सफेद होता है। सीने से लेकर पेट तक छोटी-छोटी कत्थई खड़ी लकीरें होती हैं। आँख के ऊपर से गर्दन तक एक भौंह जैसी सफेद रेखा होती है। इसके अंडे कई रंग के होते हैं। खेरमुतिया लगर से छोटी होती है। इसके नर का ऊपरी हिस्सा ईंट जैसा लाल होता है। सिर और गर्दन का बगली हिस्सा सलेटी। पीठ पर काली चित्तियाँ होती हैं। नीचे का हिस्सा बादामी होता है। मादा का ऊपरी हिस्सा ललछौंह भूरा होता है, नीचे का नर जैसा।

बहरी में केवल एक ही दोष है कि वह कभी-कभी शिकार न मिलने पर पालने वाले के पास न लौट कर इधर-उधर चल देती है जैसा न तो बाज करते है और न शिकरे। ये सदा अपने मालिक के पास लौट आते हैं, उसे छोड़ कर दूसरी जगह का रास्ता नहीं पकड़ लेते। शायद इसीलिए बहरी के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि यदि वह भटके नहीं तो अपने शिकार-गुण के कारण सोने के भाव बिके—

'जो बहरी बहरे नहीं, सोने तोल बिकाय।'

शिकरा सबसे छोटा होता है, पर हमारे यहाँ सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसका रंग-रूप पपीहे से मिलता है। नर और मादा में फर्क है। नर का ऊपरी हिस्सा गहरे राख के रंग का होता है, नीचे

का बादामीपन लिए हुए सफेद । इसके सीने से पेट तक का रंग ललछौंह होता है तथा उस पर आड़ी सलेटी लकीरें पड़ी होती हैं। मादा के ऊपरी हिस्से में भूरापन है। इसके अण्डों का रंग नीलापन लिए हुए सफेद होता है। हमारे बाग-बगीचों में शिकरे ज़्यादा संख्या में पाए जाते हैं। अक्सर यह और कभी-कभी बाज़ भी, हमारे घरों के सामने के पेड़ों पर शिकार की टोह में बैठे रहते हैं। इनके आते ही पक्षियों में खलबली मच जाती है और वे जहाँ-तहाँ भागना शुरू कर देते हैं। एक बार मेरे पिंजरे में पालित कनेरी पक्षी पर एक बाज़ ने हमला किया। पिंजरे के भीतर तक तो वह नहीं पहुँच सका पर उसके दर्शन मात्र से ही कनेरी का हार्ट फेल हो गया। ऐसा डर है इसका दूसरे—खासकर छोटे पक्षियों पर।

पुराने दिनों में जैसा कि ऊपर कहा गया है, राजा से लेकर साधारण लोगों तक में बाज़ पालने का बड़ा शौक था। कभी-कभी इसे लेकर बड़े झगड़े भी हो जाया करते थे। कहते हैं, एक बार बादशाह अकबर के दरबार में काँगड़ा के राजा आए हुए थे। उनके साथ उनका राजकुमार भी था। उसके हाथ में एक बाज़ था। शाहज़ादे (अकबर का पुत्र जहाँगीर) को यह पसन्द आ गया और राजकुमार से उसने इसे माँगा। राजकुमार ने बहाना करके कहा कि मैं घर जाकर इसकी मादा 'जुर्रा' भेजूँगा जो शिकार पकड़ने में ज़्यादा तेज़ होती है। जहाँगीर को इससे बड़ा रंज हुआ और पिता के मरने पर गद्दी पर बैठते ही उसने इसका बदला लिया। काँगड़ा के राजा तब तक मर चुके थे और वह राजकुमार राजा बन चुका था। जहाँगीर ने उसके खिलाफ फौज भेज कर उसका सिर उतरवा लिया। उन दिनों यह नियम था कि हिन्दुस्तान के

राजा-महाराजा दिल्ली के बादशाह के पास हर साल बाज़, बहरी और शिकरे पकड़वा कर भेजा करें। जो इस आज्ञा का पालन नहीं करता था उसे दण्ड दिया जाता था। इतना शौक था बादशाहों को इन शिकारी पक्षियों का !

ये पालतू होकर हाथ पर बैठे रहते हैं और इशारा पाते ही दूसरे पक्षियों पर हमला कर देते हैं और उन्हें पकड़ लाते हैं। इन सब की मादा कद में बड़ी और शिकार में तेज़ होती है। सब की चोंच नुकीली और आगे की ओर मुड़ी हुई होती है, सब के पंजे मज़बूत होते हैं।

इन सभी शिकारी पक्षियों के अंडा देने का समय फरवरी-मार्च से जून तक है। ये सभी पेड़ों पर घोंसले बनाते हैं।

हुदहुद

अक्सर एक कलगीदार पक्षी हमारे घर के सामने अपनी चोंच से, जिसका आकार नहरनी से मिलता-जुलता होता है, ज़मीन खोदता रहता है। यही है वह हुदहुद जिसे इस देश के कई भागों में 'हजामिन चिड़िया' के नाम से भी पुकारते हैं। दूब के भीतर से कीड़े ढूंढ़-ढूंढ़ कर निकालते रहने के कारण इसे 'दुबैया' भी कहते हैं।

अपनी कलगी की वजह से यह देखने में अत्यन्त सुन्दर

लगता है। इसकी कलगी के सम्बन्ध में एक बड़ा रोचक किस्सा कहा जाता है।

कहते हैं, एक बार बादशाह सुलेमान अपने उड़नखटोले पर बैठे हुए आकाशमार्ग से कहीं जा रहे थे। सूर्य की तेज़ धूप से बेचैन होकर उन्होंने उड़ते हुए गीधों से कहा कि वे उनके ऊपर छाया करते हुए उड़ें। गीध राज़ी नहीं हुए। इस पर शाह सुलेमान ने शाप दिया कि उनकी गर्दन परों से खाली रहा करे ताकि वे सूर्य की गर्मी से स्वयं जला करें।

शाह सुलेमान और आगे बढ़े। इस बार हुदहुदों का सरदार मिला। उससे भी उन्होंने यही बात कही। वह राजी हो गया और शाह सुलेमान की बाकी यात्रा आराम से कटी। खुश होकर सुलेमान ने उससे वर माँगने को कहा। उसने अपनी पत्नी से सलाह करके सारी जाति के लिए सिर पर एक सोने की कलगी चाही। बादशाह ने हँस कर वर दे दिया। तब से हुदहुदों के सिर पर सोने का मुकुट निकल आया। पर इसका परिणाम बुरा हुआ। लोग सोने के लोभ में हुदहुदों को मारने लगे। वंश-संहार की नौबत आ गई। सरदार दौड़ा हुआ शाह सुलेमान के पास आया। शाह सुलेमान ने तरस खा कर उसकी कलगी परों की कर दी। तभी से हुदहुद के सिर पर सोने की जगह परों की कलगी शोभा पा रही है। मुसलमान शायद इसी कलगी के कारण इसे 'शाह सुलेमान' नाम से पुकारते हैं।

हुदहुद के सम्बन्ध में इस प्रकार के बहुत से किस्से प्राचीन यूनान, मिस्र, क्रीट आदि देशों में भी प्रचलित थे। बाइबिल तक में इसकी चर्चा है तथा इन देशों के साहित्य में इसने स्थान पाया है।

कहते हैं, क्रीट के राजा जेरियस को अपने पाप-कर्मों के लिए हुदहुद का रूप धारण करना पड़ा था।

इसकी कई उप-जातियाँ हैं। इस देश के हुदहुद का रंग चोटी से लेकर गले तक बादामी होता है, कलगी के सिरे काले और सफेद होते हैं, आधी पीठ तथा कन्धे से सीने तक का हिस्सा हल्का बादामी होता है। पीठ पर चौड़ी सफेद और काली धारियाँ होती हैं। दुम का बाहरी हिस्सा काला, भीतरी सफेद होता है। चोंच काली सींग के रंग की और पाँव गहरे सलेटी रंग के होते हैं।

यह कीड़े-मकोड़े खाता है और उन्हीं की खोज में ज़मीन खोदता रहता है। और पक्षियों की तरह इसे पेड़ अथवा फूल-पत्तों पर के कीड़ों से शौक नहीं है। यह उन कीड़ों की खोज में रहता है जो ज़मीन के भीतर छिपे रहते हैं। नाज और फल भी इसे पसंद नहीं। यह गन्दा पक्षी है तथा इसके घोंसले से तेज बदबू आती रहती है। कभी इसकी सफाई नहीं करता। इसीलिए फ्रेंच भाषा में एक कहावत है—हुदहुद जैसा गन्दा।

फरवरी से जुलाई तक इसके अंडे देने का समय है। अंडों की संख्या तीन से दस तक होती है, रंग बादामी और हरेपन के साथ हल्का नीला होता है।

इसकी बोली कुछ अजीब-सी है—उक्-उक्-उक्। अपनी बोली से यह दूर ही से पहचाना जा सकता है। इस देश के सभी हिस्सों में यह पाया जाता है। यह फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों को खा जाता है। इसी कारण इस देश में इसके शिकार की कानूनन मनाही है।

सिर की कलगी के कारण उत्तर भारत में कहीं-कहीं इसे 'दूल्हा-पक्षी' भी कहते हैं। एक लोकगीत की इन पंक्तियों पर ध्यान दीजिए—

चैत मास बनँ मोजरन लागे,
हुदहुद को ब्याह रचा है,
साहब बन दूल्हा बैठा है।

नीलकण्ठ

नीलकण्ठ का गला नीला नहीं होता फिर भी इसका नाम नीलकण्ठ क्यों पड़ा, यह बात समझ में नहीं आती। हाँ, इसके पंख नीले जरूर होते हैं और यही वजह है कि जब यह उड़ता है और इसके पंख पूरी तरह खुल जाते हैं तभी इसका वास्तविक सौंदर्य निखरता है। इसके सिर से पीठ तक का रंग भूरा होता है, फिर हरी आसमानी और गहरी नीली लकीरें होती हैं। दुम और डैनों पर भी शुरू में आसमानी, फिर हल्का और अन्त में गहरा नीला रंग होता है। पूंछ के बीच में दो पंख हरे रंग के होते हैं। सीना ललछौंह कत्थई रंग का होता है और उस पर छोटी-छोटी सीधी धारियाँ पड़ी होती हैं। पेट बादामी, दुम का निचला हिस्सा आसमानी रंग का होता है। आँख की पुतलियाँ भूरी, चोंच कालापन लिए हुए भूरी, तथा पाँव गहरे बादामी रंग के होते हैं।

नीलकण्ठ देखने में तो एक अतिशय सुन्दर पक्षी है, पर इसका स्वभाव सुन्दर नहीं है। बड़ा ही झगड़ालू पक्षी है यह। जब देखिए जोते हुए खेत में दो नीलकण्ठ लड़ रहे हैं और शोर मचा रहे हैं। बोली भी उसकी बड़ी कर्कश होती है। ऐसे तो कीड़े-मकौड़े बहुत से पक्षियों के आहार हैं पर यह जिस तरह दिन भर उनकी तलाश में

घूमता रहता है उस तरह शायद ही और कोई पक्षी घूमता हो। शायद इसी से इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि—

'नीलकण्ठ कीड़ा भखै, करै बधिक को काम।'

इसका तरीका यह है कि किसी वृक्ष, खम्भे या टेलीग्राफ के तार पर चुपचाप बैठा हुआ यह जोते हुए खेत या मैदान की ओर टकटकी बाँधे रहता है, और जैसे ही किसी कीड़े को देखता है, बिजली की तरह उस पर टूटता है और उसे चोंच में दबा कर उड़ चलता है। 'ऊपर से अति भोले-भाले, भीतर से जल्लाद'—इसका नमूना यदि देखना हो तो नीलकण्ठ को देखें।

नीलकण्ठ की तीन मुख्य किस्में इस देश में पाई जाती हैं जिनमें कश्मीर में पाया जाने वाला नीलकण्ठ सबसे सुन्दर होता है। पक्षियों के परों का संग्रह करने वाले बच्चों को इसके पर बहुत पसन्द हैं।

इसके अंडे चीनी-मिट्टी से सफेद होते हैं और संख्या में चार या पाँच होते हैं। अंडे देने का समय मार्च से जुलाई तक है। यह पेड़ के किसी कोटर में अंडे देता है।

दशहरे के दिन नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता है। कहावत भी है—

नीलकंठ कर दरसन होय,
मन वांछित फल पावे सोय।

पता नहीं ऐसे झगड़ालू पक्षी को यह सम्मान क्योंकर प्राप्त हुआ।

महलाठ

कई पक्षी भी आदमी ही की तरह ईमानदार होते हैं, और चोर भी। चोर पक्षियों का सरदार है महलाठ जो चोर विद्या को सबसे ऊँची विद्या मानता है और दिन-रात इसी चिन्ता में लगा रहता है कि किस तरह औरों के अंडे चुरा ले और उनसे अपनी उदर-पूर्ति करे। वृक्षों पर दिन भर घूमता रहता है और किसी घोंसले में अंडे को देखते ही उसे चुरा खाता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि चिड़िया घोंसले में बैठी हुई अंडा से रही है, तो यह घोंसले के नीचे से एक छेद करके अंडा खा लेता है और उसे इसकी खबर भी नहीं होती। अक्सर घोंसले में अंडा देखकर यह जोंक की तरह वहाँ जम जाता है। ब्रिटेन के भारत-स्थित वर्तमान हाईकमिश्नर श्री मैकडानल्ड का कहना है कि एक दिन उन्होंने अपने दिल्ली के मकान के बाग में ऐसा ही एक दृश्य देखा था। एक पेड़ पर हारिल ने घोंसला बना कर अंडे दिए थे। महलाठ को इसकी गन्ध लग गई और वह वहाँ आ पहुँचा। यही नहीं, उसने बलपूर्वक

घोंसले में घुसन की कोशिश भी की। हारिल की मादा अकेली थी। फिर भी उसने इसे रोकने की भरपूर चेष्टा की। पर यह अपने उद्योग में लगा रहा। मादा रोकती थी, यह घुसना चाहता था। घंटों यह झगड़ा चलता रहा। अन्त में नर के आ जाने से उसे हार कर वहाँ से निराश लौट जाना पड़ा।

महलाठ कद में प्राय डेढ़ फुट लम्बा होता है जिसमें एक फुट लम्बी तो केवल पूँछ ही होती है। नर और मादा की शक्ल-सूरत में कोई फर्क नहीं होता। इसका सिर, सीना और गर्दन धूमिल काले रंग के होते हैं। अपने घर के आमने-सामने के दरख्तों पर हमें यह अक्सर नज़र आता रहता है। यह पेड़ों पर चोर की तरह चुपके से आता है।

नाज के दाने से लेकर साँप-छछूंदर तक यह सब कुछ खाता है। जब उत्तेजित होता है तो 'कोकली, कोकली' बोलना शुरू कर देता है और बड़ा शोर मचाता है।

इसका घोंसला बड़ा बेढंगा होता है जो यह शीशम, नीम, आम आदि के बड़े दरख्तों पर फरवरी से जुलाई के बीच बनाता है। यदि कोई दूसरा पक्षी उस वृक्ष पर घोंसला बनाने आता है तो बिगड़ खड़ा होता है। इसके अंडों का रंग भी जलवायु के मुताबिक होता है। ये कभी सफेद, कभी ऊदी और कभी मटमैले से होते हैं जिन पर बादामी, बैंगनी, हरी और लाल चित्तियाँपड़ी रहती हैं।

इसके बच्चे भी माँ-बाप की तरह शोर मचाने वाले होते हैं तथा बहुत दिनों तक उनके पीछे-पीछे घूमा करते हैं।

महलाठ को मुटरी, महताब और कोकैया भी कहते हैं। बंगाल में यह 'टाकचोर' नाम से प्रसिद्ध है जो इसकी आदत को देखते हुए उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

गौरैया

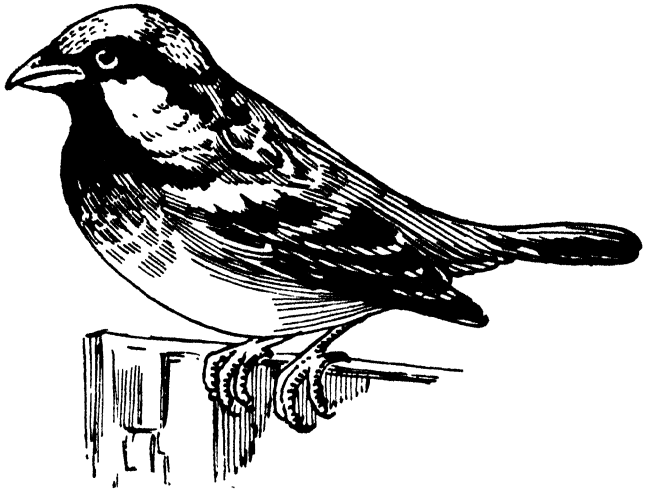

कौए की तरह ही गौरैया भी हमारा सुपरिचित पक्षी है। 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' यदि कौए के सम्बन्ध में सच है तो उससे भी ज्यादा यह गौरैया पर लागू होता है। कौए तो हमारे मकान की छत, आँगन और बरामदे तक में ही आते हैं पर गौरैया तो बिना किसी हिचकिचाहट के हमारे घरों के भीतर घुस कर केवल खेल-कूद ही नहीं मचातीं बल्कि पूरा डेरा दाल देती हैं और उसमें इस इतमीनान के साथ रहती हैं, घोंसले बनाती हैं, अंडे देती हैं, बच्चों का लालन-पालन करती हैं मानो घर उनका ही हो और हम केवल एक अतिथि के नाते उसमें ठहरे हुए हों।

अक्सर जब हम अपने कमरे में बैठे हुए कुछ लिखते-पढ़ते रहते हैं तब ये ऊपर से घास-फूस के टुकड़े हमारे सिर पर या मेज़ पर गिरा डालती हैं और जब हम इससे परेशान हो कर अपना क्रोध व्यक्त करते हैं तो ये उछल-उछल कर खूब शोर मचाने लगती हैं,

मानो हमारी इस बेइज्ज़ती और हाथ-पाँव पटकने पर ज़ोरों से हँस रही हों। यही नहीं, कभी-कभी ये हमारी मेज़ पर भी उतर आती हैं और बड़ी बेफिक्री के साथ उस पर कूद-फांद मचाती हैं, चींचीं-चूं-चूं करती हैं और हमारी शान्ति भंग कर डालती हैं। वे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं करतीं कि सामने कोई बैठा हुआ लिख या पढ़ रहा है। ढिठाई में ये कौए से किसी भी कदर कम न होकर कुछ बढ़ी-चढ़ी ही हैं।

गौरैया भारतवर्ष के सभी हिस्से में पाई जाती है, समतल क्षेत्र और ऊँचे पहाड़, दोनों ही इसके लिए समान हैं। पर खास कर गृह-गौरैया, जिन्हें अंग्रेज़ी में House Sparrow कहते हैं, उन्हीं जगहों में रहना पसन्द करती हैं जहाँ आदमियों की आबादी है चाहे वह राजस्थान का गर्म इलाका हो या हिमालय की सर्द जगह।

इनकी तीन उप-जातियाँ इस देश में मुख्य रूप से पाई जाती हैं। एक वह जो दिन-रात हमारे घरों में डेरा डाले रहती हैं। दूसरी वह जो पेड़ के सूराख में अपना घोंसला बनाती हैं। तीसरी तूती। पहली के नर के सिर का ऊपरी हिस्सा सलेटी, चोंच से आँखों के बाल तथा गर्दन के नीचे छाती तक काला रहता है। पीठ, डैने, कत्थई भूरे रंग के होते हैं जिन पर छोटी-छोटी काली-सफेद धारियाँ बनी रहती हैं। दुम गहरी भूरी होती है। गाल तथा पेट पर मैली सफेदी, पर कुछ सफेद, कुछ बादामी, कुछ भूरे रंग के मिले-जुले होते हैं।

मादा के शरीर का गर्दन से लेकर नीचे का हिस्सा नर जैसा, ऊपर का भूरा तथा डैने गहरे भूरे रंग के होते हैं जिन पर काली-

सफेद धारियाँ बनी रहती हैं। आँख के ऊपर एक हल्की बादामी रेखा होती है। इनकी आँख की पुतलियाँ, चोंच और पाँव भूरे रंग के होते हैं। चोंच मोटी होती है। नर की भूरी चोंच गर्मियों में काली हो जाती है।

दूसरी जाति की गौरैया वह है जिसे वृक्ष-गौरैया के नाम से पुकारते हैं तथा जिसके नर-मादा की सूरत-शक्ल गृह-गौरैये के नर जैसी होती है। किन्तु कद में यह उससे छोटी होती है। सिर का रंग सलेटी न होकर गुलाबीपन लिए हुए चाकलेट जैसा होता है। गाल के सफेद स्थल पर एक काला धब्बा होता है। यह साधारण गौरैयों की तरह ढीठ नहीं होती और न उतना शोर ही मचाती है। दार्जिलिंग आदि पहाड़ी जगहों में यह अधिकतर पाई जाती है।

तीसरी जाति या उपजाति की गौरैया को तूती कहते हैं। हल्का बादामी रंग, बाहों पर अखरोट के रंग का धब्बा, डैनों पर दो सफेद लकीरें तथा गले का कुछ हिस्सा नारंगी-पीला। यही इसकी रूप-रेखा है। मादा के गले पर पीलापन नहीं होता। यह भी पेड़ों पर ही एक साथ कई रहती हैं तथा इनके गले में मिठास और सुरीलापन होता है। आवाज़ पतली होती है जिसके कारण कहावत बन गई है—

'नक्कारखाने में तूती की आवाज़।'

लोग इसे बड़े शौक से पिंजरे में पालते भी हैं जहाँ यह बड़े आनन्द के साथ गाया करती है। उर्दू शायरी में इसकी जगह-जगह चर्चा है।

गौरैया ऐसे तो साल भर अंडे देती है पर अधिकतर फरवरी

से मई तक के महीनों में। एक बार में पाँच-पाँच, छः-छः अंडे दे डालती हैं जिनका रंग हल्का हरापन लिए हुए सफेद होता है। इस पर कत्थई चित्तियाँ भी बनी रहती हैं। इनके बच्चों का सबसे बड़ा शत्रु एक प्रकार की मक्खी है जो इनके घोंसले में ही घोंसला बनाकर इनके बदन से चिपक जाती है और इनका खून पी जाती है।

गृह-गौरैया हमारे घरों में घोंसला बना डालती हैं। घास-फूस का छोटा सा घोंसला होता है जो अक्सर ऊपर से हमारे सिर पर आ गिरता है। कभी-कभी घोंसले से बच्चे भी हमारे बदन पर आ गिरते हैं। मुझे स्वयं कई बार यह मुसीबत उठानी पड़ी है।

ये कभी-कभी ऐसी जगहों पर अपने घोसलें बना डालती हैं जिसकी आदमी कल्पना भी नहीं कर सकता है। १९४० की बात है। मैं हज़ारीबाग जेल में था। वहाँ टोपियों की ज़रूरत तो होती नहीं, सो मैंने अपनी गांधी-टोपी घर में एक जगह पर रख छोड़ी थी। एक दिन सहसा मेरी नज़र उस पर गई तो देखा कि गौरैयों ने उसके भीतर घोसला बना डाला है। यही नहीं, उसमें अंडे तक दे डाले थे। मैं बड़े हैसबैस में पड़ा। सिर्फ घोंसले होते तो उन्हें निकाल फेंकता पर इन अंडों का क्या करूँ! अन्त में मैंने कुछ न करने का निश्चय किया तथा जब तक अंडों से निकल कर बच्चे उड़ने लायक न हो गए, टोपी ज्यों की त्यों पड़ी रही।

एक और मौके पर एक नवजात शिशु ऊपर शहतीर पर बने हुए घोंसले से नीचे आ पड़ा और मेरे सामने यह समस्या उठ खड़ी हुई कि उसे घोंसले में किस तरह वापस भेजा जाए। अन्त में जेल

के वार्डर ने हमारे अनुरोध पर सीढ़ी के सहारे उसे पुनः ऊपर पहुँचाया ।

गौरैयों को नहाना बहुत पसन्द है । अक्सर आप देखेंगे, सुबह होते ही ये जल में नहा रही हैं । शायद इसीलिए देहात में

लोग इन्हें पक्षियों में ब्राह्मण मानते हैं । कभी-कभी ये धूल में भी नहाया करती हैं । घाघ* का कथन है कि यदि गौरैयां धूल में नहाएं तो समझ लीजिए कि अब जल्दी ही वर्षा होने वाली है ।

*एक लोक-कवि जिसकी कहावतें, खासकर खेतीबाड़ी से सम्बन्ध रखने वाली, भारत में मशहूर हैं ।

गौरैयों की भी लड़ने वाली प्रकृति है। जब देखिए इनके बीच दंगल मचा हुआ है, कभी दो, कभी चार, कभी छः एक साथ लड़ रही हैं। पहलवानों की तरह उठ-उठ कर ये लड़ती हैं। यही नहीं, कभी-कभी लड़ती हुई ये हमारी मेज़, पलंग या बदन पर भी आ गिरती हैं। लड़ने का इन्हें इतना शौक है कि जब-तब झूठी लड़ाइयाँ भी लड़ती रहती हैं।

तूती को छोड़कर बाकी जाति की गौरैयों को पिंजरे में पालने की इस देश में परिपाटी नहीं रही है। पर पुराने ज़माने में रोम और यूनान में लोग इन्हें भी बड़े शौक से पाला करते थे। गौरैयां हर देश में पाई जाती हैं, चाहे वे यूरोप के हों या अफ्रीका अथवा एशिया के। किन्तु इनके रंग-रूप में फर्क होता है।

उल्लू

उल्लू तथा अन्य पक्षियों में स्वभाव ही का नहीं, बनावट का भी काफी फर्क है।

आम तौर पर उल्लू दिन में नहीं निकलते, पेड़ों के किसी झुरमुट में या किसी पुराने मकान और खंडहर के कोने में जा बैठते हैं। शाम होते ही बाहर निकल आते हैं तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर प्रेतों की तरह उड़ने लगते हैं। पर यह कहना कि उल्लू को दिन में नहीं सूझता, गलत है, क्योंकि कई बार दिन की तेज रोशनी में भी ये इधर-उधर उड़ते नजर आते हैं। हाँ, इतना जरूर है कि दिन की रोशनी इनकी आँखों को भली नहीं लगती।

उल्लू अपने शिकार को सीधे निगल जाते हैं, नोंच-नोंच कर नहीं खाते। और चिड़ियों की तरह यह चंचल नहीं होते। किसी आवाज के कान में पड़ते ही तुरन्त भाग खड़े नहीं होते।

इन पर यदि आप ढेले भी मारें तो भी ये ऐसे बैठे रहेंगे मानो इन्हें किसी बात की परवाह नहीं है। फिर कुछ देर बाद आपकी ओर क्रोधभरी आँखों से देखते हुए धीरे से उठ कर चल देंगे।

इनकी बनावट में भी कुछ विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार हैं—

१. इनकी आँखें अन्य पक्षियों की तरह बगल में नहीं होतीं, मनुष्य की तरह सामने होती हैं। आँखें काफी बड़ी और गोल होती हैं।

२. पीछे देखने के लिए यह गर्दन घुमा सकते हैं जो और चिड़ियाँ नहीं कर पातीं।

३. इनके पर पश्मीने की तरह अत्यन्त मुलायम होते हैं और इसीलिए इनके उड़ने में आवाज़ नहीं होती।

४. इनके कान बड़े और खुले होते हैं जबकि और पक्षियों के कान बालों से ढके होते हैं।

उल्लू की भी अनेक किस्में हैं। मुख्य ये हैं —

१—अन्न-संग्रहालय का उल्लू : इसका रंग ऊपर सुनहला बादामी, नीचे सफेद होता है। नर-मादा एक-से होते हैं। यह अधिकतर पुराने मकान के खंडहरों में निवास करता है।

रात में एक मनहूस-सी आवाज़ करता हुआ यह मकान की छत के एक हिस्से से दूसरे हिस्से पर घूमता रहता है। इसका बोलना अशुभ माना जाता है।

चूहे के लोभ में जहाँ अन्न का भंडार होता है, वहीं रहना यह ज़्यादा पसंद करता है।

२—मत्स्य उल्लू : इसे मछली बहुत पसंद है। अतएव जल के किनारे किसी वृक्ष या मकान पर यह रहता है। सिर बड़ा, ऊपर के

पर गहरे कत्थई रंग के, डैने और दुम भूरे, गला सफेद होता है। सिर के ऊपर उठे हुए पर के गुच्छे होते हैं जो लम्बे कान जैसे लगते हैं। इसके पंजों में नुकीले काँटे होते हैं जो मछलियों को जकड़ कर पकड़ लेते हैं।

३—**सींगदार उल्लू** : इसके सर पर दो काली-काली कलगियाँ होती हैं जो सींग जैसी लगती हैं।

४—**खूंसट या चितकबरा उल्लू** : इसके ऊपर के बाल बादामी होते हैं जिन पर सफेद दाग होते हैं। नीचे के पर बादामी धब्बों से भरे हुए सफेद होते हैं। आँख पीली होती है। वृक्ष के कोटर, पुराने मकानों की सूराख में यह घोंसला बनाता है। अक्सर शाम को बाहर निकल कर खम्भों अथवा टेलीग्राफ के तारों पर कीड़े-मकोड़े या छोटे चूहों की प्रतीक्षा में बैठा रहता है। इस देश का यह सबसे प्रसिद्ध उल्लू है और तादाद में भी सबसे अधिक है। इसे जंगल-झाड़ी की बजाय गाँव और शहर ज़्यादा पसंद हैं। बहुधा यह हमारे बरामदे में आकर लैम्प पर उड़ते हुए पतंगों को पकड़-पकड़ कर खाने लगता है। बंगाल में इसका घर में आना शुभ मानते हैं।

खूंसट के कद का ही एक और छोटा-सा उल्लू होता है जिसे चंडूल या चुगद कहते हैं। इसके ऊपर का रंग बादामी, नीचे का सफेदी लिए हुए हल्का बादामी होता है। आँखों के ऊपर सफेद भौंह होती है तथा दोनों कानों के ऊपर उठे हुए पंख होते हैं जो कान जैसे लगते हैं।

उल्लू स्वयं घोंसला न बनाकर अधिकतर गीध आदि अन्य पक्षियों के बनाए हुए घोंसले पर कब्जा कर लेते हैं और उसी में

सफेद रंग के दो अंडे दिया करते हैं, कभी-कभी प्राचीन वृक्षों के कोटर या सूराख में भी।

उल्लू लक्ष्मी का वाहन माना गया है। लक्ष्मी ने उल्लू ही को अपना वाहन क्यों चुना, यह समझ में नहीं आता।

तीतर

तीतर हमारे यहाँ के मशहूर तथा जाने-पहचाने पक्षियों में है जो झाड़ियों से घिरे हुए मैदानों में रहता है। इसकी दो किस्में बहुतायत से इस देश में पाई जाती हैं—एक चितकबरा, दूसरा काला। चितकबरे के ऊपर का हिस्सा भूरा, नीचे का हल्का बादामी होता है। सिर और गर्दन को छोड़ कर शरीर के ऊपरी सारे हिस्से में सफेद और निचले में गहरी भूरी धारियाँ और चिन्ह बने होते हैं। नर और मादा में केवल इतना अन्तर है कि नर के पंजों के ऊपर एक काँटा होता है जो मादा में नहीं होता। काले तीतर के ऊपरी काले हिस्से पर सफेद सीधी आड़ी धारियाँ और चित्ते होते हैं। गले में एक कत्थई कंठा होता है, सिर और सीना गाढ़ा काला और नीचे के गहरे भूरे हिस्से पर सफेद धारियाँ बनी होती हैं। डैने कत्थई रंग के होते हैं। आँखों के नीचे एक सफेद चित्ता होता है। पूंछ का निचला हिस्सा बादामी होता है। पूंछ पर पतली सफेद और काली लकीरें होती हैं। मादा का ऊपरी हिस्सा कत्थई रंग का होता है। पैर सफेद होते हैं जिस पर हल्की काली धारियाँ बनी होती हैं। तीतर पैरों पर ज्यादा चलते हैं, उड़ते कम

हैं। कीड़े-मकोड़े, दीमक और नाज के दाने इनके आहार हैं। ज़मीन में गढ़ा बनाकर उसी में ये साल भर अंडे देते हैं जो संख्या में ६ से ९ तक तथा रंग में हल्के बादामी होते हैं। बच्चे मुर्गी के बच्चों की तरह अंडों से निकलते ही चलना शुरू कर देते हैं।

इस देश में तीतर लड़ाने का रिवाज बहुत पुराना है। पहले यह ज्यादा था। अब कम है, फिर भी, शायद ही कोई ऐसा नगर होगा—खासकर उत्तर भारत में—जहाँ तीतर लड़ाने वाले न मिलें। कई शहर और गाँव तो ऐसे मिलेंगे जहाँ तोते के पिंजरों की तरह घर-घर में तीतर के पिंजरे टंगे होंगे। यही नहीं, अक्सर तीतर अपने पालने वाले के पीछे-पीछे दौड़ते चलते हैं। आगे खाली पिंजरे के साथ पालने वाला, पीछे तीतर। मुर्गे की तरह तीतर खूब ज़ोरों से लड़ते हैं। अपने-अपने पिंजरे से जब कभी दो लड़ाकू तीतर बाहर निकलते हैं, ज़ोरों से 'पतीला, पतीला' बोलना शुरू कर देते हैं और ताल ठोक कर लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। फिर इशारा पाते ही एक-दूसरे से जूझ पड़ते हैं, हटाए नहीं हटते। जब एक हार कर गिर जाता है, तब दूसरा विजयी पहलवान की तरह छाती फुला कर उसके पास खड़ा हो जाता है। इनकी लड़ाई देखने के लिए लोग सैकड़ों की संख्या में इकट्ठे होते हैं और इन पर बाजी लगाते हैं। दिल्ली में ये दंगल आए दिन हुआ करते हैं। लड़ते चितकबरे तीतर हैं, काले नहीं। इनके पिंजरे को ज्यादा समय कपड़े से ढँक कर रखते हैं।

तीतर को अपने बच्चों से बड़ा प्रेम है। सारा परिवार ज्यादातर साथ-साथ चला करता है। किसी खतरे के आने पर माँ-बाप झाड़ी में छिप जाते हैं, बच्चे इस तरह खड़े हो जाते हैं मानो

मिट्टी की मूर्तियाँ हों। खतरे के टलते ही सब फिर साथ हो जाते हैं। तीतर में उड़ने की ताकत कम है, थोड़ा ही उड़ कर थक जाता है। इसीलिए कहावत बन गई है कि तीन उड़ान में तीतर पकड़ाता है।

★

मोर

मोर एक ऐसा पक्षी है जिस पर इस देश को गर्व है। दक्षिण के कुछ स्थानों को छोड़ कर इस देश के बाकी सभी हिस्सों में यह पाया जाता है। भारतवर्ष में ही यह मुख्य रूप से पाया जाता है, यह हम निःसंकोच भाव से कह सकते हैं। इसकी सुन्दरता अपूर्व है। शाहजहाँ बादशाह जो सुन्दरता का एक सबसे बड़ा पारखी हो गया है, इससे इतना प्रभावित हुआ था कि करोड़ों रुपये खर्च करके उसने अपने लिए एक 'मयूर-सिंहासन' बनवाया था जो 'तख़्ते-ताऊस' के नाम से विख्यात है। इसमें बड़े कीमती मणि-माणिक्य जड़े हुए थे। देखने में यह हू-बहू दुम उठाए नर-मयूर जैसा लगता था। भगवान कृष्ण इसकी पूँछ के पर को बाल्य-काल में हमेशा सिर पर धारण किए रहते थे, जैसा कि इस पंक्ति में वर्णित है—

'मोर-मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।'

नर मोर सुन्दर होता है पर मादा भद्दी होती है। नर के सिर पर छोटे-छोटे हरे और नीले घुँघराले पंख होते हैं जिस पर एक सुन्दर कलगी होती है। सिर पर हरे-नीले चमकीले रोएँ होते हैं। गर्दन गहरी चमकीली नीली होती है। ऊपर का हिस्सा सलेटी

हरा रहता है, दुम का ऊपरी हिस्सा भूरे रंग का तथा सीना और निचले सभी हिस्से चमकीले हरे रंग के होते हैं। दुम के पर लम्बे और बड़े सुन्दर होते हैं जिनके सिरे पर गोलाई होती है और रंग गाढ़ा नीला होता है। गोले में एक अर्ध चन्द्र की आकृति का चिन्ह बना हुआ होता है।

आँखें भूरी, चोंच सींग के रंग की तथा पाँव सलेटी भूरे होते हैं। मोर के पैर बड़े कुरूप होते हैं। कहावत है कि जब मोर नाचता-नाचता अपने पैर को देखता है तो दुःख से नाचना बन्द कर देता है।

असम के जंगलों में ऐसे मोर भी पाए जाते हैं जो रंग में बिल्कुल सफेद होते हैं।

मोरनी की पूँछ लम्बी नहीं होती। इसके रंग में भूरापन तथा बादामीपन अधिक है। एक मोर के साथ कई मोरनियाँ रहती हैं जिनके बीच में यह मस्त होकर नाचा करता है। मोर का नाचना जगत प्रसिद्ध है। आकाश में बादल देखकर या उसका गर्जन सुनकर यह आनन्द से भर उठता है और नाचना शुरू कर देता है। नाचते वक्त यह पूँछ को उठाकर गोलाकार खड़ा कर लेता है। तब यह गोल फलक-सा लगने लगता है। और तब इसमें चमक-दमक से भरी हुई हज़ारों 'आँखें' निकल पड़ती हैं। एक-एक मोर-चन्द्रिका में 'नीलम' और 'फिरोज़ा' चमकने लगते हैं।

मोर जल्दी ही पालतू हो जाता है। पालनेवाले के पुकारते ही यह उसके पास आ जाता है। इसका आहार अन्न और कीड़े-पतंगे, छिपकलियाँ आदि तो हैं ही, यह साँप तक को खा जाता है। साँप

इसकी बोली सुनकर ही डर कर भाग खड़े होते हैं। इसकी बोली बड़ी तीव्र होती है और ऐसा लगता है मानो यह पुकार-पुकार कर अपना नाम ही उचार रहा हो—मयूर, मयूर।

मोरनी ज़मीन पर ही किसी झाड़ी में अंडे दे डालती है जिनकी संख्या ५ से ७ तक होती है। कभी-कभी पुरानी इमारतों की छत पर भी यह अंडे देती है। जून से अगस्त तक उसके अंडा देने का समय है। अंडे का रंग हाथी-दाँत जैसा सफेद होता है।

पानी के किनारे झाड़ियों में रहना इसे ज़्यादा पसंद है। राजस्थान, ब्रज, हरियाना तथा चित्रकूट में ये झुंड के झुंड नज़र आते हैं। कभी-कभी ५० या १०० तक एक साथ। ११वीं सदी में ईराक आदि देशों में भारत से मोर मंगवा कर मोर की नस्ल तैयार करने की कोशिश हुई, पर ये मोर भारत के मोर जैसे सुन्दर नहीं हो सके। कहा जाता है कि इन्हें सम्राट सिकन्दर पहले-पहल भारत से यूरोप ले गया था।

जैसे कोयल अपने गान के लिए मशहूर है, वैसे ही मोर नृत्य के लिए। अतएव इस पुस्तक का आरम्भ कोयल से और अन्त मोर से किया गया है। इन दोनों पर ही हमें बहुत नाज़ है तथा—

गाते और नाचते लड़के,
हो आनन्द विभोर,
कोयल जब तरु पर गाती है,
और नाचता मोर।

अर्थात् इस देश के बच्चों को ये दोनों ही बहुत प्यारे हैं।

उपसंहार

हमारे सुपरिचित पक्षियों की यह कथा समाप्त हुई। इन पक्षियों के अलावा और भी हज़ारों किस्म के पक्षी हैं, जिनसे आगे चलकर परिचय प्राप्त कर तुम्हें आनन्द भी होगा और विस्मय भी। तुम देखोगे कि फूलों की भांति ये पक्षी भी तरह-तरह के रंग-रूप और आकार के हैं, तथा इनके नित्य प्रति के जीवन से तुम शिक्षा भी ग्रहण कर सकोगे।

कहते हैं एक बार स्काटलैण्ड का राजा ब्रूस कई युद्धों में हार कर सफलता की आस छोड़ कर कहीं छुपा हुआ था। सामने दीवार के सहारे एक मकड़ी जाल बुन रही थी। जाल बार-बार टूटता था, पर वह हार न मानकर अपने काम में जुटी हुई थी। अन्त में वह सफल हो गई। इसे देखकर राजा ब्रूस को भी हिम्मत बंधी और वह फिर दुश्मनों से जाकर लड़ा। इस बार उसने उन पर विजय पाई। उस मकड़ी और राजा ब्रूस की तरह पक्षी भी न हिम्मत हारते हैं, न थकते हैं। अपने भोजन की तलाश में वे कभी-कभी तो मीलों दूर चले जाते हैं और फिर शाम को अपने बसेरे पर लौट कर बच्चों को दाना खिलाते हैं। सुबह होते ही फिर अपने काम में जुट जाते हैं। सदा उमंग से भरे हुए प्रसन्न रहते हैं। जब तक बच्चे उड़ने लायक न हो जाएं, उन्हें नियम से दाना देते रहते हैं, एक दिन भी उन्हें भूखा नहीं रहने देते। अपने कर्त्तव्य का पालन बड़ी अच्छी तरह करते हैं। सन्तान रक्षा में बहुधा देखा गया है कि

पक्षी अपनी जान की भी परवाह नहीं करते। एक घटना मेरी आखों के सामने घटी। 'गुलमोहर' के वृक्ष पर पीलक पक्षी का एक घोंसला था। नर-मादा घोंसले के पास बैठे हुए शिशुओं की निगरानी कर रहे थे। इतने में एक कौआ वहां आ धमका। बस पीलक की त्यौरियाँ चढ़ गईं और वह हुंकारता हुआ कौए पर टूटा। कौआ भाग चला। पीलक ने उसका पीछा किया तथा उसके अंगों पर चोंच मारता हुआ उसे वह बाग की सरहद के पार तक भगा आया। फिर लौटकर वह इस तरह बैठा, जैसे दंगल में विजयी कोई पहलवान बैठा हो। जिस तरह पक्षी अथक परिश्रम और उत्साह से घोंसला बनाते और अपने बच्चों की रक्षा करते हैं, वैसे ही उमंग के साथ हमें भी अपने देश को उन्नत बनाने में हाथ बँटाना चाहिए और उसकी रक्षा करनी चाहिए।

इस पुस्तक में तुमने देखा होगा कि कई पक्षियों में आपस का भाईचारा और मेल ऐसा है कि किसी दुश्मन के आते ही वे सभी एक हो जाते हैं और मिलजुल कर उसका मुकाबला करते हैं। और इस तरह हमें मानो बता देते हैं कि आपस के मेल में कितना बल और सफलता भरी हुई है।

अधिकाँश पक्षी दल बाँध कर रहते हैं, अलग-अलग खिचड़ी नहीं पकाते। एक-दो नहीं, हज़ारों की संख्या में वे एक स्थान से दूसरे स्थान को आते-जाते रहते हैं। रात का बसेरा लेने के लिए वे प्रायः रोज शाम को झुंड बाँध कर आकाश में उड़ते नज़र आते हैं। यही नहीं, भोजन की तलाश में जब तिब्बत, साइबेरिया आदि देशों की झीलें जाड़ों में बर्फ से ढक जाती हैं, तब वहाँ के जल पक्षी हिम्मत हार कर नहीं बैठ जाते, बल्कि

लाखों की तादाद में भारत जैसी दूर की जगहों में आ पहुंचते हैं। फिर गर्मी के दिन आते ही वे भारत से वहीं वापस लौट जाते हैं। आश्चर्यजनक है इनका हज़ारों मील के रास्ते का ज्ञान। ये कभी भी अपने निश्चित मार्ग से भटकते नहीं, दिन रात उड़कर अपनी जगह पर लौट जाते हैं और वहाँ अंडे देकर पुनः अपना घर बसा लेते हैं। इनसे हमें हिम्मत और बहादुरी के सबक सीखने चाहिएं।

जाति के नाम पर धब्बा न लगे, इसके लिए पक्षी सदा सतर्क रहते हैं। उदाहरण के लिए कौए को लीजिए। यदि कोई कौआ ऐसा बुरा काम कर बैठता है जो वंश पर धब्बा लगाने वाला होता है, तो बाकी कौए उसे चोंच से मार-मार उसका प्राण तक ले डालते हैं।

कितना संतोष भरा है इन पक्षियों का जीवन! ये कभी आवश्यकता से अधिक किसी चीज़ की इच्छा नहीं करते। जितना दाना मिल पाया, उसी पर गुज़ारा करते हैं। कभी भी लोभ या असंतोष की आग में जलते नहीं। किसी कवि के इस कथन का वास्तविक मर्म मानो पक्षियों ने ही समझा है —

गज-धन, गो-धन, बाजिधन
और रतन-धनखान,
जब आवे संतोष-धन
सब धन धूरि समान।

महात्मा कबीरदास ने भी कहा है कि हमें दूसरों की घी चुपड़ी हुई रोटियाँ देखकर जी नहीं ललचाना चाहिए। अपनी रूखी-सूखी रोटियों से ही संतोष करना चाहिए। बेशक पक्षी अपने आचरण से कबीरदास के इस वचन का समर्थन करते हैं तथा हमारे सामने इसका उच्च आदर्श रखते हैं।

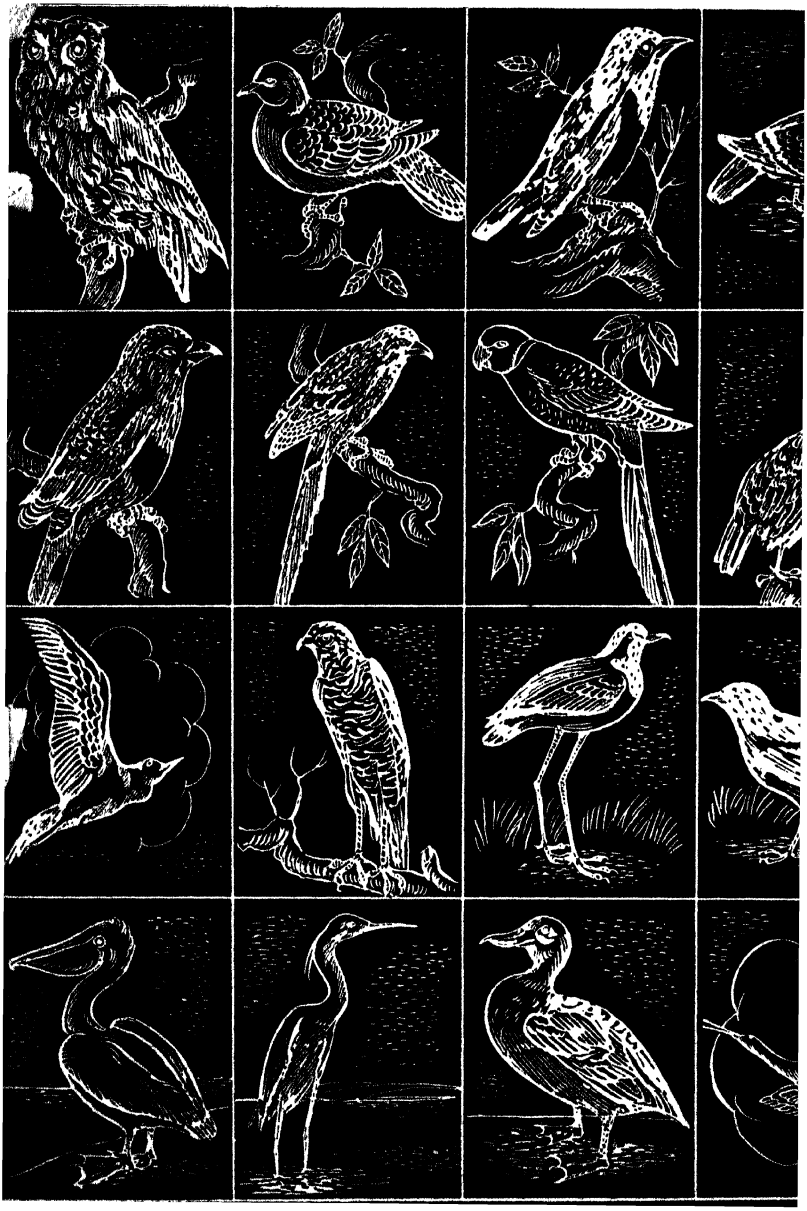

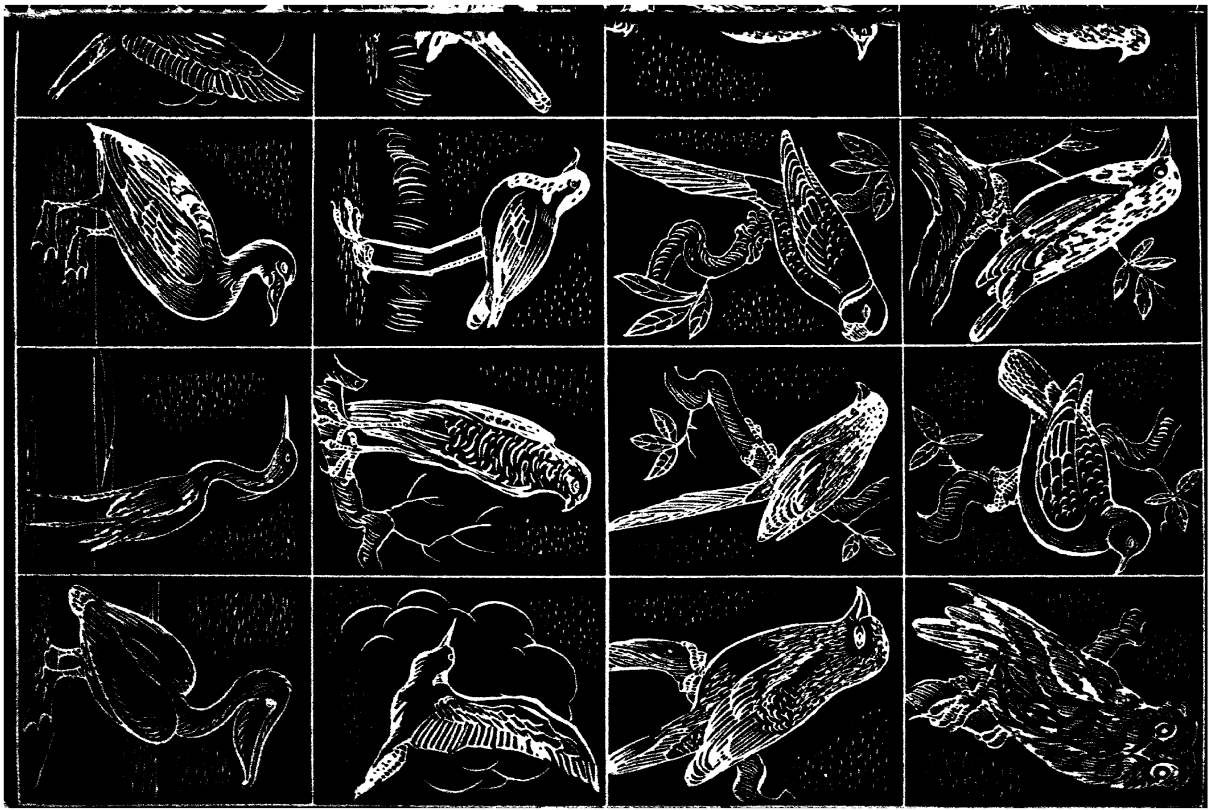

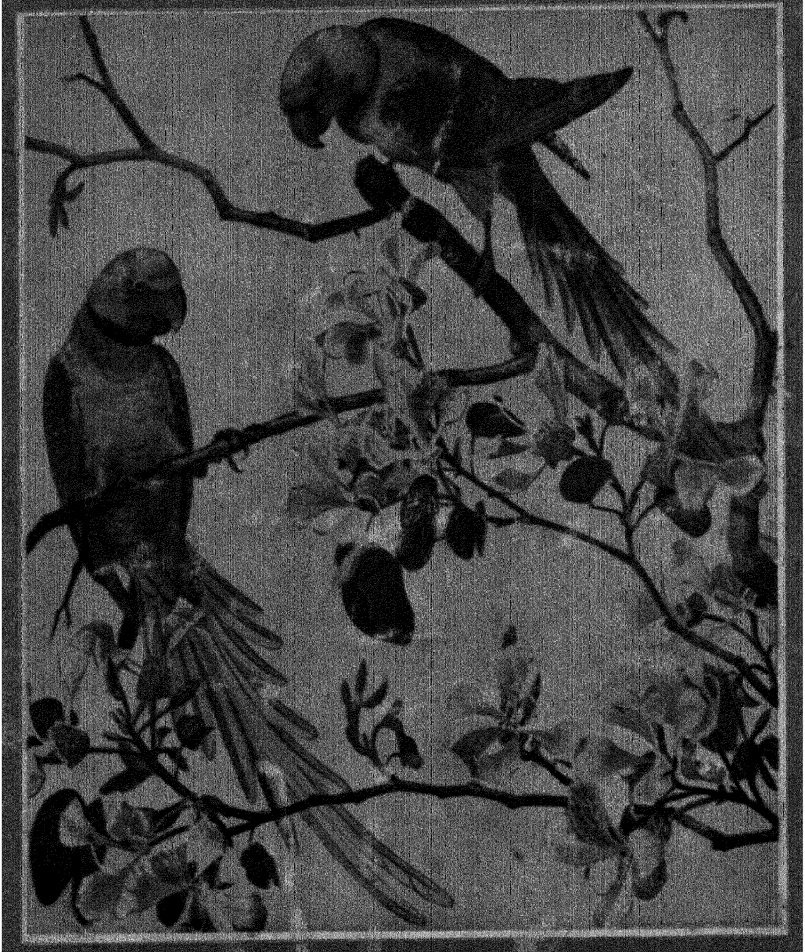

हमारे पक्षी

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
दिल्ली-6